मासिक समाचार पत्र

लोकविद्या पंचायत

● सूचना युग में बराबरी के विचार के पुनर्निर्माण का पत्र ●
● लोकविद्याधर समाज के पुनर्संगठन का वैचारिक आधार पत्र ●
● पूँजी आधारित समाज के स्थान पर ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का विचार पत्र ●

वर्ष 1 , अंक 1 , कुल पृष्ठ : 8 | 5 मई 2011 | सहयोग राशि : 5 रुपये

लोकविद्या जीवनयापन अधिकार संघर्ष में शहादत

बी.कृष्णराजुलु

आन्ध्र देश के समुद्र तटीय श्रीकाकुलम जिले के वद्दितन्द्र गाँव में 28 फरवरी 2011 को पुलिस की गोली से दो आन्दोलनकारी मारे गये वद्दितन्द्र वर्ष 2010 के मध्य एक बहुत बड़े विस्थापन विरोधी आन्दोलन का केन्द्र बना हुआ है। बगल में ही कांकडपल्ली है जहाँ एक बहुत बड़ा कोयले पर आधारित बिजली घर प्रस्तावित है। ईस्ट कोस्ट एनर्जी प्राइवेट लिमिटेड नाम की निजी कम्पनी एक 2640 मेगावाट का बिजली घर बनाने जा रही है जिसकी लागत 12,000 करोड़ रूपये है। आन्ध्र प्रदेश सरकार ने इस कम्पनी को 1000 हेक्टेयर जमीन दी है। यह एक ऐसा दलदल का इलाका है जहाँ 40 तालाब हैं और एक बड़ा क्षेत्र नमक बनाने के काम आता है। लगभग 30,000 लोग अपनी जीविका के लिये इस सब पर निर्भर हैं।कम्पनी ने पर्यावरण से सम्बन्धित जो रिपोर्ट बनाई है उसमें लिखा है कि यह नीची बंजर भूमि है जहाँ कोई नहीं रहता है और इसलिये पुनर्वास का कोई सवाल यहाँ नहीं है। जबकि वन विभाग के अनुसार जमीन का यह टुकड़ा समुद्र के किनारे का गीला इलाका है और यह विविध प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर है। राजस्व व जनगणना विभागों की रिपोर्ट के अनुसार लगभग 20000 लोग यहां नमक बनाने का काम करते है, 5000 लोग तालाबों में मछली पालन करते हैं और 5000 परिवार खेती करते हैं। लगभग 30 गाँव के जन समुदाय पूरी तरह बिजली परियोजना के खिलाफ है, जिससे उनकी जीविका छिनना तय है।

28 फरवरी की गोलाबारी व दो व्यक्तियों की मृत्यु के 15 दिन बाद 12 मार्च को स्थानीय लोगों ने वद्दितन्द्र की सीमा पर अपना 224 दिनों से चला आ रहा क्रमिक अनशन फिर से शुरू कर दिया। तुरन्त पुलिस हाजिर हो गई। धरपकड़ की गई और अपराधिक धारायें थोप दी गई। इसके एक दिन पहले 11 मार्च को हैदराबाद में कांकड़पल्ली परियोजना के विरोध में एक दिवसीय धरना हुआ इस धरने में शामिल मानवाधिकार मंच जन आन्दोलनों का राष्ट्रीय समन्वय, लोकविद्या जनआन्दोलन और महिला अधिकार मंच ने स्थानीय लोगों के विरोध को पूरी तरह न्याय संगत बताया और उनको पूर्ण समर्थन दिया। इन लोगों ने कहा कि बिजलीघर बनाने वाली कम्पनी लगातार झूठ बोल रही है और उनका कुछ राजनैतिक और प्रशासनिक अधिकारी साथ दे रहे हैं। इन लोगों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिये और वहाँ बिजलीघर बनाने की अनुमति तुरन्त वापस ले ली जानी चाहिये।

ध्यान रहे जुलाई 2010 में श्रीकांकुलम के ही एक अन्य स्थान सोमपेटा में एक अन्य निजी बिजलीघर के चलते होने वाले विस्थापन के खिलाफ संघर्ष में 4 स्थानीय आन्दोलनकारी मारे गये थे।

●

कनहर बाँध से आदिवासियों में आक्रोश

दिलीप कुमार 'दिली'

उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले में कनहर नदी पर बाँध की योजना वर्ष 1976 में शुरू हुई थी। सरकारों के बदलते रहने से 1985-86 में यह योजना बन्द हो गयी। फिर 1989 में काम शुरू हुआ और 1990 में फिर काम बन्द हो गया। लम्बे समय के अन्तराल से वर्ष 2007 में इसका पुनर्निरीक्षण हुआ और इस वर्ष इस पर काम भी शुरू हो गया और अब यह लक्ष्य तय किया गया है कि वर्ष 2015-16 तक यह बाँध बन जाये। इस अव्यवस्था का खामियाजा इस क्षेत्र में रहने वाले आदिवासियों को भुगतना पड़ रहा है। समय-समय पर प्रशासनिक अधिकारी आकर उनके बसे-बसाये संसार को उजाड़ने की बात करते रहे हैं। इस परियोजना के चलते लगभग 40 गाँव डूब के क्षेत्र में आयेंगे। उत्तर प्रदेश के लगभग 25 गाँव, छत्तीसगढ़ के 16 गाँव और झारखण्ड के 5 गाँव डूब के क्षेत्र में आयेंगे।

यह पूरा इलाका आदिवासियों की ही आबादी का है। गोंड, पनिका, खरवार, परिहा, चेरो, भूइयाँ, अगरिया आदि इन जातियों के लगभग 8000 परिवार विस्थापन के शिकार होंगे।

आदिवासियों से बात करने पर उन्होंने कहा कि 1980 में 2000 रुपये प्रति बीघा के रेट से मुआवजा दिया गया। वादे के अनुसार विस्थापित परिवारों में से 40 परिवारों के एक आदमी को

... शेष पृष्ठ 8 पर

नाभिकीय ऊर्जा किस कीमत पर?

के.के.सुरेन्द्रन

18 अप्रैल 2011 को जैतापुर नाभिकीय ऊर्जा कारखाने का विरोध करने वाले मछुआरों पर पुलिस ने गोली चलाई। नाते गांव का मछुआरा तबरेज सायेकर मारा गया उसकी पत्नी तथा और लोगों का

जैतापुर के स्थानीय निवासियों का विरोध जुलूस

यह कहना है कि तबरेज की मौत पुलिस की गाड़ी में हुई। उन्होंने उसके मृत शरीर को वापस लेने से इनकार कर दिया और मांग की कि पोस्टमार्टम की विडियोग्राफी की जाये।

महाराष्ट्र के अरब सागर के तट पर रत्नागिरी जिले के जैतापुर गाँव में नाभिकीय ऊर्जा का एक बड़ा कारखाना बनाने के प्रस्ताव का उस इलाके के लोग लगातार सख्त विरोध करते रहे हैं। जापान की प्रलयकारी दुर्घटना के नाभिकीय खतरों के सामने आ जाने के बाद यह विरोध और बहुत व्यापक हो गया है। अब केन्द्रीय पर्यावरण मंत्रालय ने हाल ही में इस कारखाने के निर्माण को अनुमति दी है और केन्द्र सरकार ने कहा कि महाराष्ट्र. सरकार कारखाने के कार्य को हर हालत में आगे बढ़ाये। इसका बेहद प्रतिकूल प्रभाव स्थानीय मानस पर पड़ा। तुरन्त 18 अप्रैल को एक बड़ा विरोध संगठित हुआ। करीब 700-800 मछुआरों ने प्रदर्शन में भाग लिया। पहले स्थानीय संगठनों और संस्थाओं ने शिवसेना के साथ प्रदर्शन किया जब पुलिस ने लगभग 30 कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया। कोंकण बचाओ समिति के अनुसार इसके बाद दोपहर में लगभग 10 गाँव के मछुआरों ने नाते जैतापुर पुल के पास विरोध प्रदर्शन शुरू किया। इन पर, महिलाओं और बच्चों, सब पर पुलिस ने लाठियां बरसाईं और गोलियाँ चलाई। कई लोग घायल हुए और तबरेज सायेकर मारा गया।

नाभिकीय ऊर्जा बेहद खतरों से भरी हुई होती है और स्थानीय लोगों को रोजमर्रे के प्रभाव के चलते भी दीर्घकालिक स्वास्थ्य हानि भुगतनी पड़ती है। नाभकीय ऊर्जा और परमाणु बम के बीच नजदीक का रिश्ता है। इन सब बातों के चलते दुनिया भर में और अपने देश में भी सामाजिक सरोकार रखने वाले इसका विरोध करते रहे हैं। जैतापुर परियोजना के विरोध में भी सभी सामाजिक तबकों से बात उठ रही है।

●

विस्थापन रोको सम्मेलन वाराणसी

गंगा और वरुणा के संगम पर 10 अप्रैल, 2011 को दिनभर चले इस विस्थापन रोको सम्मेलन में मुख्य रूप से यह बात हुई कि विस्थापन विरोधी संघर्ष पूरे लोकविद्याधर समाज की एकता के स्थान हैं। आज सरकार बड़े व्यवस्थित ढंग से लोकविद्याधर समाज को

विस्थापित करके जमीनी, खनिज, बाजार और धन्धे पूंजीपतियों को सौंप रही है। किसान, कारीगर, आदिवासी और ठेला-गुमटी वाले जब चाहे तब उजाड़ दिए जाते हैं। वे अपनी जमीनों, संसाधनों, धन्धों और घरों तक से बड़े पैमाने पर बेदखल किये जा रहे हैं। गाँव के गाँव उजाड़ दिए जाते हैं और बस्तियों के नामों-निशान मिट जाते हैं। ये सब वही लोग हैं जो लोकविद्या के बल पर जीवन यापन करते हैं। लगभग 100 की भागीदारी के इस सम्मेलन में सभी वक्ताओं ने इस बात पर जोर दिया कि विस्थापित समाजों का पुनर्वास एक धोखा है। मुआवजे, फिर से बसाने और नौकरी देने की राजनीति में कोई समाधान नहीं है।

विस्थापन मनुष्य को उसकी विद्या, लोकविद्या से अलग कर देता है और इसी में उसकी ज़िन्दगी बर्बाद होने का पैगाम होता है। लोकविद्याधर समाज का लोकविद्या से अलगाव, यही गरीबी और मजबूरी का सबसे बड़ा कारण है। लोकविद्या के आधार पर जीवन-यापन करना मनुष्य का मौलिक अधिकार है। वास्तव में यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। अपनी विद्या के बल पर हर कोई अपनी ज़िन्दगी चला सके इसको संवैधानिक सुरक्षा मिलनी चाहिए। ये बातें विस्थापन से गहरे से जुड़ी हुई हैं, इसलिए विस्थापन के सक्षम विरोध के लिए पूरे लोकविद्याधर समाज को एकजुट होना होगा।

सम्मेलन बुलाया ही यह कहकर गया था कि लोकविद्याधर समाज की व्यापक एकता के रास्तों पर बातचीत होगी। सभी ने इस पर राय दी और अन्त में एक लोकविद्या मंच का गठन किया गया जिसमें विभिन्न भागीदार संगठनों के प्रतिनिधि शामिल हुए। तय हुआ कि हर महीने एक बार लोकविद्या मंच की बैठक होगी।

सम्मेलन में विद्या आश्रम, डिबेट सोसायटी, गांधियन इंस्टिट्यूट आफ स्टडीज, भारतीय किसान यूनियन, वाराणसी व चन्दौली, अखिल भारतीय किसान महासभा चन्दौली, किसान संघर्ष समिति मोहन सराय, किसान संघर्ष समिति करसड़ा, बुनकर वेलफेयर संघर्ष समिति वाराणसी, नाई समाज दशाश्वमेध घाट, मत्स्यजीवी सहकारी समिति सराय मोहाना, पटरी व्यवसायी संगठन इंग्लिशिया लाइन और लोकविद्या नौजवान सभा शामिल रहे। इनके अलावा कई सामाजिक कार्यकर्त्ता, महिलाएँ, कारीगर और किसान व्यक्तिगत रूप में भी शामिल हुए।

इस मौके पर विद्या आश्रम ने ''विस्थापन रोको'' के नाम से एक पुस्तिका का प्रकाशन किया।

●

मानवाधिकार जन-सम्मेलन

संजरपुर, आजमगढ़, 27 फरवरी 2011

''आजमगढ़ के निर्दोष मुस्लिम नौजवान ही नहीं सरकारी मिशनरी के निशाने पर छत्तीसगढ़ के गरीब आदिवासी भी हैं। वहां पर 650 गांवों को जलाकर आदिवासियों को बेघर कर दिया गया। सैंकड़ों की संख्या में लापता है। मानवाधिकार आयोग जैसी संस्थाएं कहां हैं? नए हिन्दुस्तान की लड़ाई छत्तीसगढ़ के आदिवासियों और संजरपुर के निर्दोष नौजवानों को मिलकर लड़नी है।'' ये बातें वरिष्ठ मानवाधिकार नेता हिमांशु कुमार ने संजरपुर में आयोजित विशाल राष्ट्रीय मानवाधिकार जनसम्मेलन में कही।

दिल्ली से आई मानवाधिकार नेता शबनम हाशमी ने जांच एजेंसियों की भूमिका पर सवाल उठाते हुए कहा कि माले गांव, समझौता एक्सप्रेस, मक्का मस्जिद में विस्फोट करने वाले असीमानंद और सुनील जोशी का योगी आदित्यनाथ के साथ गहरा सम्बन्ध उजागर हुआ है, बावजूद इसके आजतक योगी को गिरफ्तार करना तो दूर पूछताछ तक भी नहीं की गई। पीयूसीएल के राष्ट्रीय सचिव चितरंजन सिंह ने कहा कि देश में हुए तमाम धमाकों की नए सिरे से जांच की जाए। उन्होंने संघ परिवार और उसकी फासिस्ट विचारधारा की न्यायपालिका तक में घुसपैठ पर चिंता जताते हुए न्यायपालिका में धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की पुनर्बहाली की मांग की। लखनऊ के वरिष्ठ वकील मो. शोएब ने भाजपा के बजाए कांग्रेस, सपा और बसपा को ज्यादा खतरनाक बताते हुए कहा कि ये पार्टियां भाजपा की दूसरे नम्बर की टीम है जो सेकुलर चेहरे के साथ संघ परिवार के एजेण्डे को बढ़ा रही हैं।

मुम्बई से आए मानवाधिकार नेता फिरोज मिठीबोलवाला ने भारत सरकार के अमेरिका और इजराईल के साथ बढ़ते नापाक रिश्ते

... शेष पृष्ठ 8 पर

नये भूमि अधिग्रहण कानून की अनिवार्यता

मेधा पाटकर

अलीगढ़ के किसानों द्वारा एक्सप्रेस-वे के अतिरिक्त इसके इर्दगिर्द स्थित हजारों गाँवों की कुछ किलोमीटर तक की जमीनें हड़पने का आरोप लगाने के बाद देश की राजनीति तय करनेवाले उत्तर प्रदेश की राजनीतिक भूमि पर हलचल मच गयी और तमाम राजनेताओं को इस विषय पर अपनी भूमिका स्पष्ट भी करनी पड़ी। भूमि अधिग्रहण एक बार पुनः नये सिरे से मुद्दा बन गया है। पहले भी नर्मदा से लेकर नन्दीग्राम और रायगढ़ से लेकर सोमपेटा तक यह ज्वलन्त मुद्दा था। राज्य का सार्वभौम सत्ता का अधिकार नहीं बल्कि 'अहंकार' किसानों, आदिवासियों, दलितों की भूमि पर आक्रमण कर भरे-पूरे गाँवों को खत्म कर वहाँ शहर बसाने के लिए बिल्डरों और कम्पनियों को कर में राहत देते हुए उन्हें उजाड़ने की साजिश कर रहा है। यह अहंकार 'सेज', नदी एवं नदी घाटियों को समाप्त कर वहाँ रहनेवाले समाज और संस्कृति को नष्ट करने में भी साफ दिखायी देता है। अब समय आ गया है जब इस अधिग्रहण में कितना विकास और कितना सार्वजनिक हित है, का जवाब जनता को दिये जाने को भूमि अधिग्रहण की पूर्व शर्त माना जाय। इसलिए इस ब्रिटिशकालीन भूमि कानून के खिलाफ संघर्ष को तेज करना आवश्यक है।

राज्य द्वारा 'विकास' के नाम पर किये जा रहे अत्याचारों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष कर रहे माओवादियों से हथियार डालने के बाद चर्चा का वादा करती नजर आती सरकारें देशभर में नदी घाटियों से लेकर खनन और सेज के विरुद्ध चल रहे अहिंसक आन्दोलनों से चर्चा करने से न केवल बचती रही हैं बल्कि इन स्थानों पर राज्य अपना एजेण्डा थोपता नजर आता है। अलीगढ़ में दो किसानों की शहादत के बाद ही सही पर राजनीतिक दलों द्वारा भूमि अधिग्रहण कानून में 'नियोजित संशोधनों' को जिस तेजी से लोकसभा में पारित कराने की घोषणा की गयी है उससे लगता है कि राजनीतिज्ञ इस मसले पर अभी भी गम्भीर नहीं हैं। इससे पहले 1998 में एक प्रयास हुआ था। इसके बाद 2008 में और इन दोनों के बीच जिस तरह 2005 में बिना बहस के संसद ने 'सेज' कानून को पारित किया ठीक उसी तरह इस बार भी कुछ संशोधनों के साथ भूमि अधिग्रहण कानून को पारित करने के प्रयास होंगे।

भूमि अधिग्रहण की संकल्पना की बुनियाद में है 'राज्य का सार्वभौम सत्ता' का सिद्धान्त। इसमें भूमि और उससे जुड़े सभी प्राकृतिक संसाधन और सम्पदाएँ शामिल हैं। साम्राज्यवादी शासकों की इन आवश्यकताओं को आजाद भारत के शासकों ने न केवल ज्यों का त्यों अपनाया बल्कि 1984 में कम्पनियों के लिए जमीन उपलब्ध करवाने को भी सार्वजनिक हित की परिभाषा में लेकर औपनिवेशिक शासकों को भी पीछे छोड़ दिया। इसके बाद शोषण का नया दौर उद्योग और रोजगार के नाम पर शुरू हो गया और आज खेती, किसानी और खाद्य सुरक्षा विनाश के कगार पर खड़ी है। इसी के साथ खेती और उसपर निर्भर समाज की अवमानना का दौर भी प्रारम्भ हो गया। इसका सत्यापन इस बात से होता है कि नये मसौदे में और भी खतरनाक प्रावधान हैं। इसके अन्तर्गत निवेशक द्वारा 70 प्रतिशत निजी भूमि क्रय करने पर बकाया 30 प्रतिशत सरकार द्वारा अधिग्रहित कर देने का प्रावधान धमकी के रूप में कार्य करेगा। सारी दुनिया में लोकतन्त्र का डंका बजानेवाले भारत को यदि शर्मिन्दा होने से बचना है तो उसे वर्तमान भूमि अधिग्रहण कानून को रद्द ही करना होगा। इसके बदले एक व्यापक विकास नियोजन का कानून प्रस्तावित करना होगा। इसके अन्तर्गत शासन को कुछ संसाधन अपने हक में लेने का अधिकार तो होगा लेकिन लोकतन्त्र की चुनी हुई स्थानिक इकाइयों द्वारा अपरिहार्य न्यूनतम अधिग्रहण की मंजूरी देने के बाद ही ऐसा सम्भव हो पायेगा। इसके लिए सर्वप्रथम जरूरी है खेती से गैर-खेती के कार्यों में भूमि को हस्तान्तरित करने पर रोक लगाना। जिस तरह सैद्धान्तिक तौर पर भारत में धरती पर 33 प्रतिशत वनोच्छादन को स्वीकृति मिली है ठीक उसी प्रकार भूमि को खाद्यान्न उपजाने के लिए भी सुरक्षित रखा जाना अनिवार्य है। विकास की दौड़ में हम आज जो खोते जा रहे हैं वह हमारे जीवन एवं जीविका के आधार हैं। यह दौड़ विस्थापितों को अपमानित, पूर्णतः वंचित एवं निर्वासित कर अपना असर दिखा रही है। इस स्थिति को बदलना होगा। विस्थापन के नये और व्यापक कानून में 'पुनर्वास' की परिभाषा और प्रक्रिया का स्पष्ट और न्यायपूर्ण होना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत गम्भीर रूप से प्रभावित परिवारों को जीविका के वैकल्पिक आधार की उपलब्धता पर ही विस्थापित किये जाने का प्रावधान होना चाहिए। विस्थापन को न्यूनतम रखे जाने पर ही पुनर्वास सम्भव है अन्यथा इससे भ्रष्टाचार और अत्याचार जन्म लेते रहेंगे।

नर्मदा घाटी के पिछले 25 वर्षों के संघर्ष में हमने कई बार नयी राष्ट्रीय पुनर्वास नीति लाने का प्रयास भी किया है। केन्द्रीय मन्त्रालयों और योजना आयोग से इस मसले पर संवाद और संघर्ष दोनों ही किये हैं। वर्ष 2003 में मंजूर हुई राष्ट्रीय पुनर्वास नीति पर अभी तक अमल नहीं हुआ है। इसे लागू करने हेतु सचिवों की उच्चस्तरीय समिति ने 2009-10 तक एक बार भी बैठक नहीं की है। ऐसे में न्यूनतम विस्थापन के साथ नियोजन के उद्देश्य की पूर्ति कैसे सम्भव है? 'अगर-मगर' की रट लगाकर सिंचाई परियोजनाओं को अगर उसी जिले में शासकीय खेत/जमीन उपलब्ध है तो मंजूरी दे दी जायेगी जैसे प्रावधान नये पुनर्वास कानून में भी जारी हैं। न्यूनतम 400 परिवारों के उजड़ने पर ही इस कानून के लागू होने के प्रावधान का क्या अर्थ है? आवश्यकता है परिवार के साथ ही पूरे गाँव, समाज या प्राकृतिक इकाई जैसे नदी घाटी पर परियोजना के प्रभावों के आकलन करने के पश्चात् ही अनुमति दी जाय। इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर पूर्ण सामाजिक, पर्यावरणीय एवं आर्थिक अध्ययन किया जाय। प्रस्तुत मसौदे में केवल अध्ययन का प्रावधान है पर उनके निष्कर्षों के आधार पर योजना के सम्बन्ध में निर्णय लेने की बात टाल दी गयी है।

इसी परिप्रेक्ष्य में देशभर के जनसंगठनों ने व्यापक 'विकास नियोजन कानून' के पक्ष में आवाज उठायी है। इसका मसौदा भी जनसंगठनों ने वर्ष 2005 में तैयार कर लिया था। उस समय प्रभावशील राष्ट्रीय सलाहकार परिषद की अध्यक्ष सोनिया गांधी ने भी इसे मंजूर किया था। इसके बाद मन्त्रिपरिषद ने इसे कृषिमन्त्री की अध्यक्षता में गठित मन्त्री समूह को सौंप दिया था। नये मसौदे को अस्वीकार करते हुए हमारा प्रश्न है कि तत्कालीन राष्ट्रीय सलाहकार परिषद द्वारा पारित मसौदे को स्वीकार क्यों नहीं किया गया? इसका तुरन्त जवाब दिया जाना आवश्यक है अन्यथा असन्तोष बढ़ेगा और विद्रोह भी।

(17 मार्च 2011 के 'आज' अखबार से साभार)

विकास का राजनीतिक पहलू

दिलीप खान

विकास परियोजनाओं से होने वाले विस्थापनों पर जब सवाल उठता है तो उसकी राजनीतिक दिशा को लेकर संसदीय राजनीतिक दल एक विचित्र पशोपेश में होते हैं। कुछ राज्यों के चुनावी प्रतिस्पर्धा में जब जातिगत समीकरण को विकास के चेहरे तले ढँक दिया गया तो यह स्थापना भी जाहिर हुई कि चुनावी रणनीति में विकास एक मजबूत हथियार है। इसलिए विकास के नाम पर अब राजनीतिक होड़ पहले से अधिक तेज होने की उम्मीद है। जातिगत गुणा-गणित पृष्ठभूमि में फलेंगे-फूलेंगे लेकिन मुख्य चेहरा के तौर पर विकास को प्रस्तुत किया जाएगा। लेकिन, समस्या यह है कि विकास के जिन तरीकों को देश में अपनाया जा रहा है और जिसे विकास बताया जा रहा है, उसके विरोध में आबादी का एक बड़ा तबका खड़ा है। उनका प्रश्न रोजगार, जमीन अधिग्रहण और विस्थापन जैसे मुद्दों के साथ जुड़ा है। इसलिए, संसदीय पार्टियाँ विकास परियोजनाओं के नाम पर विस्थापित होने वाले समूहों को मतदान पेटी के भीतर लाने के लिए विकास के लोकप्रिय प्रतिमानों का सहारा भी नहीं ले सकतीं। परियोजनाओं के लिए जमीन अधिग्रहण से अधिकांश जगहों पर स्थानीय जनता में रोष व्याप्त है और उन्होंने इसे खारिज किया है। हाल-फिलहाल ऐसे क्षेत्रों में भी प्रदर्शन हुए हैं जो अब तक जनप्रतिरोधों को लेकर नक्शे में नहीं पहचाने जाते थे। ऐसे प्रदर्शन अब बंगाल और नर्मदा घाटी से निकलकर देश के शेष भागों में फैल रहे हैं तो सवाल वापस विकास मॉडल पर आकर टिक जाता है।

मौजूदा मॉडल के जरिए विकास हासिल करने की प्रक्रिया में बड़ी आबादी को दरकिनार किया जाना इसके चरित्र का हिस्सा है। इसलिए बड़ी कम्पनियों द्वारा लगाये गये कारखानों और सेजों के विरोध में देश के कुछ हिस्सों में लम्बे समय तक संगठित आन्दोलन चले। बंगाल से टाटा को जाना पड़ा तो नियामगिरी में वेदांता ने काम पर स्थगन का आदेश पाया। यह उदार जनोन्मुखी सरकारी फैसला नहीं था बल्कि यह लोगों का दबाव था। बंगाल, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड की स्थानीय जनता ऐसी परियोजनाओं के खिलाफ सालों से आन्दोलन कर रही है, लेकिन ऐसे उदाहरणों से यदि सरकार यह उम्मीद पाले कि विरोध को एक खास जोन की परिघटना बनाकर उससे निपट लिया जायेगा तो विरोध की चेतना का उनका यह मापन अंततः दोषपूर्ण साबित होगा। असल में, राज्य अपनी नीतियों के जरिए ही विरोध की राजनीतिक जमीन तैयार कर रहा है। 'कल्याणकारी राज्य' की संकल्पना के साथ तो राज्य जनता के बीच उपस्थित है लेकिन अधिकांश मौकों पर वह जन-आकांक्षाओं के विरुद्ध चला जाता है। जनता की इच्छाओं और राज्य की इच्छाओं के बीच जो फर्क है उसी को मिटाने के लिए जनता सड़क पर उतरती है अथवा राज्य जनता को समझाइश देता है। यह फाँक जितनी बड़ी होगी विरोध उतना अधिक होगा और राज्य के कल्याणकारी होने की स्थापना भी उतनी ही अधिक दरकेगी। हाल-फिलहाल देश में हो रहे विरोध-प्रदर्शनों के आईने से इसे देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि जनता और सरकारी नीतियों के बीच का धागा बेहद तन गया है।

अब तक ऐसा बताया जाता था कि देश के कुछ अन्य हिस्सों के साथ-साथ पूर्वी महाराष्ट्र में भी विरोध का पूरा अभियान वामपंथी अतिवादियों द्वारा संचालित है और वे अपनी राजनीतिक लाभ के लिए स्थानीय मुद्दों को इसमें जोड़ रहे हैं। इसके साथ इससे भी प्रमुखता से यह बताया जाता था कि राज्य के दूसरे हिस्सों में विकास के प्रति लोगों का रुख राज्य की नीतियों से मेल खाता है और वही लोग विरोध में खड़े हैं जो माओवादियों के भड़काने से भटक गए हैं। लेकिन अब यह स्पष्ट हो रहा है कि जमीन की लड़ाई का मोटा राजनीतिक विभाजन गलत है। पश्चिमी महाराष्ट्र के कई हिस्सों में ऐसी विकास परियोजनाओं को लेकर स्थानीय लोग सड़क पर उतरे हैं, जिनमें उनकी जमीनें छीनने की कवायदें चालू हैं। ये ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ माओवादियों की भूमिका होने से सरकार भी इन्कार कर रही है। जैतापुर से लेकर लवासा तक में बड़े प्रदर्शन हुए। जैतापुर के सम्बन्ध में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने कहा कि वे अधिकतम भुगतान करने को तैयार हैं लेकिन लोग मान ही नहीं रहे। लोगों के इस मनोभाव को किन सन्दर्भों में देखा जाना चाहिए?

सवाल सिर्फ औद्योगिक विकास और औद्योगिक पिछड़ापन तक ही सीमित नहीं है बल्कि स्थानीय लोगों के लिए यह सांस्कृतिक जमीन को बचाने की जद्दोजहद है। शहरी रिहाइशों के मुकाबले दूर-दराज में रहने वाली इन ग्रामीण आबादियों ने लम्बे समय में अपनी एक सामाजिकता तैयार की है। सवाल इसी सामाजिकता को बचाने का है और इसलिए देश में अब विस्थापन का सवाल अधिकतम हर्जाने के पार जा रहा है। सामाजिक-सांस्कृतिक पूँजी और आर्थिक पूँजी में से राज्य द्वारा अर्थ को प्राथमिकता देने का जो आग्रह जाहिर हो रहा है, वह उन तमाम गरीब जनताओं के लिए जुगुप्सा पैदा करने वाला है जो सिर्फ सामाजिक-सांस्कृतिक पूँजी के बदौलत जीवन जी रहे हैं। राज्य द्वारा दोहरे स्तर पर ऐसे प्रयास हो रहे हैं। पहले कि ऐसी व्यवस्था को राज्य ने अपनाया जिसमें पूँजी की वैश्विक तरलता को विकास के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। दूसरे कि इसी व्यवस्था को वास्तविक संस्कृति बतायी जा रही है। इसलिए सांस्कृतिक-सामाजिक विकास के अन्य प्रश्नों को दबाया जा रहा है। विकास के नाम पर जब जमीन का अधिग्रहण होता है तो इसी मनोभाव के तहत लोगों से राज्य यह कहता है कि वह उसका हर्जाना देने को तैयार है तो विस्थापित होने में लोगों को दिक्कत नहीं महसूस करनी चाहिए। इस प्रयास में समूची ऐतिहासिक बसावट के सवाल को विकास के नारों तले दबा दिया जाता है। अधिक कचोटने वाली बात यह है कि नीतिगत तौर पर कमोबेश सभी संसदीय दलों ने इस व्यवस्था को मान्यता दे रखा है। आर्थिक विकास की नीतियों के सन्दर्भ में पारम्परिक तौर पर दो विरोधी राजनीतिक दलों के बीच जिस हद तक समानता है, उसे उन दलों की राजनीतिक विचारधारा से बाहर निकलकर देखने की जरूरत है। विकास अपने-आप में एक राजनीति है। इसलिए विकास योजनाओं को लेकर इन राजनीतिक दलों के बीच की फांक मिटी हुई है। इस राजनीतिक मसले को समझने के लिए नागपुर के बहुचर्चित मिहान परियोजना का उदाहरण लें। कांग्रेस सरकार द्वारा शुरू की गई इस योजना की बारीकियाँ समझाने के लिए महाराष्ट्र के तत्कालीन भाजपा अध्यक्ष नितिन गडकरी ने नागपुर के मैदान में घण्टों यह बताया कि कैसे विदर्भ की उस पूरी पट्टी का मिहान के जरिए कायाकल्प हो जायेगा। इसमें विस्थापित पचास हजार लोग विपक्षी राजनीतिक दल के लिये सरकार को घेरने का मुद्दा नहीं बन पाया? राजनीतिक दाव-पेंच में जबकि हरेक मुद्दे पर एक-दूसरे को नीचा करने की कोशिशों में ये दल लगे रहते हैं, ऐसे में सत्तासीन दल की योजना का विपक्षी दल द्वारा गुणगान करना विकास की राजनीति की नई परतें खोलता है।

संसदीय राजनीतिक संरचना में जमीन अधिग्रहण और विस्थापन को प्रमुख राजनीतिक दलों द्वारा घेराव का मुद्दा नहीं बनाया जा सकता। देश में सरकार बनाने और सरकारी नीतियों को संचालित करने से ऊपर की जो राजनीति है और जो अमूमन सतह पर नहीं दिखती, वह अधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली है। अर्थव्यवस्था को किन उत्पादन प्रणाली के जरिए विकसित मुकाम दिया जाए, यह दीर्घकालीन राजनीतिक कार्यक्रम है और इसे पाँच-साला सरकार परिवर्तन की राजनीतिक संघर्ष को नियंत्रित करने वाली राजनीति के तौर पर देखा जाना चाहिए। उत्पादन प्रणालियों को हर पाँच साल में नहीं बदला जा सकता, इसलिए उसी संरचना में अधिकतम विकास हासिल करने की होड़ राजनीतिक एजेण्डा बनता है, जो प्रचलित है। विकासशील से विकसित बनने की नीति पर चलते देश ने एक खास समय सीमा निर्धारित कर रखा है जहाँ तक पहुँचते-पहुँचते इसे विकसित हो जाना है। इस बात को भारतीय जनमानस के भीतर पैबस्त कराने के लिए भरसक प्रयत्न हुए हैं। अब कोई भी राजनीतिक दल यदि इस समय सीमा को आगे बढ़ाने की घोषणा करेगा अथवा विकास की जो तस्वीर उसमें पेश की गई है उसके मुतल्लिक यह कहेगा कि वहाँ पहुँचने का दूसरा रास्ता अधिक महफूज है तो वोट की गोलबन्दी में वह पीछे रह जाएगा। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि विकास की लोकप्रिय परिभाषा के तौर पर मध्यम वर्ग के सामने पिछले कुछ दशकों में जो खाका तैयार किया गया है वह गणितीय तौर पर समस्याओं का समाधान करता दिखता है। इसलिए सत्ता में आते ही प्रत्येक दल की यह कोशिश होती है कि वह विपक्षी दलों की घोषणाओं से अधिक तेज अपने को दर्शा दे। इस प्रतिस्पर्धा में विकास का मौजूदा प्रतिमान और अधिक ठोस हो जाता है।

विकास की इस एकांगी परिभाषा के उलट भी कभी-कभार तस्वीरें दिखती हैं। विस्थापन को राजनीतिक दलों द्वारा मुद्दा भी बनाया जाता है। लेकिन यह तब होता है जब एक बड़ा जनसमूह उस विषय पर एकमत होकर डट जाते हैं। ऐसे में कोई भी राजनीतिक दल उस क्षेत्र विशेष में जनता की आवाज बनने की कोशिश कर सकता है लेकिन वह इसे स्थाई एजेण्डा नहीं बना सकता, क्योंकि विकास की प्रचलित परिभाषा पर उसका सैद्धान्तिक तौर पर समर्थन है, यह एक मजबूरी के तहत उठाया गया कदम भर होता है।

इस विषय पर विभिन्न दलों के बीच ठोस समानता साफ-साफ जाहिर है। देश में ऐसे मुद्दों के सन्दर्भ में की गई राजनीतिक बयानबाजी आड़ी-तिरछी लकीरें खींचती मालूम पड़ती हैं। लवासा को लेकर जिस समय पर्यावरण मंत्रालय ने काम स्थगित करने की बात कही थी तो कुछ राजनेताओं का कहना था कि यह मेधा पाटेकर के दबाव में आकर लिया गया फैसला है। जैतापुर के सम्बन्ध में नारायण राणे ने यह कहा कि यहाँ बाहरी लोगों द्वारा प्रदर्शन हो रहे हैं, स्थानीय लोग तो चुप बैठे हैं। शुरुआती दौर में जब नियामगिरी में स्थानीय लोग आन्दोलन कर रहे थे तो उसे नजरन्दाज किया जा रहा था। सिंगूर और लालगढ़ में जब बड़े आन्दोलन हुए तो यह कहा गया कि यह अतिवादी शक्तियों के बड़े राजनीतिक कार्यक्रम को साधने का जरिया है। ऐसे में सही और आदर्श मानदण्डों पर आधारित विरोध कैसे हो यह जनता को बताया जाना चाहिए। राजनेता इसका भरोसा दें कि वे अमुक रास्ते पर होने वाले विरोध को संजीदगी से लेंगे।

प्रथम तल्ला, सी/2, पीपल वाला मोहल्ला, बादली एक्सटेंशन, दिल्ली-42
मो॰ 91 9555045077, E-mail: dilipk.media@gmail.com

विस्थापन का दंश और स्त्री

प्रेमलता सिंह

विकास की आधुनिक अवधारणा में हमारे समाज की उत्पादक और ज्ञानी शक्तियों किसान, कारीगर, छोटे दुकानदार, आदिवासी समाजों का बड़े पैमाने पर विस्थापन हो रहा है। इन समाजों में रहने वाली बहुसंख्य स्त्रियाँ अपनी जमीन, विद्या, उद्योग परिवेश, मूल्य और समृद्ध संस्कृति से विस्थापित हो रही हैं। विभिन्न रूपों में होने वाले विस्थापन और उसके परिणामों पर चिन्तन करना आज उतना ही आवश्यक है जितना अपनी संतानों का पोषण करना।

विस्थापन के प्रकार–

1. बड़े पैमाने पर गैर कृषि कार्यों के लिये कृषि भूमि का अधिग्रहण।
2. कारीगरी के उद्योग-धन्धों का समाप्त होना।
3. छोटे दुकानदार और पटरी पर रोजगार करने वाले लोगों का खदेड़ा जाना।
4. जंगल की भूमि आदिवासियों से छीनकर बड़े उद्योगपतियों को बेचना।
5. सरकारी नीतियों और शिक्षा क्षेत्र में ज्ञानी समाज (किसान, कारीगर, आदिवासी और छोटे दुकानदार) और उनके ज्ञान की पूर्ण उपेक्षा करने का षडयंत्र रचना।
7. उत्पादन के सभी संसाधन पूँजीपतियों को मुहैया कराना।
8. बाजार का निर्धारण बड़ी कम्पनियों के हाथ में होना।

हमारा देश कृषि प्रधान है। अतः कृषि उद्योग समाज का सबसे बड़ा उद्योग है। बड़ी संख्या में स्त्रियाँ प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से किसानी में दखल रखती रही हैं। लेकिन कृषि भूमि का बड़े-बड़े कारखाने बनाने, पावरप्लाण्ट, सीवेज प्लाण्ट, एक्सप्रेस वे, कई लेन की सड़कें बनाने, बड़े भू-भाग में बहुमंजिली-बड़ी इमारतें बनाने, विस्तृत क्षेत्र में व्यावसायिक प्रतिष्ठान बनाने जैसे अनगिनत कार्यों के लिए अधिग्रहण होने से अपने परिवारों और समाजों के साथ स्त्रियाँ बड़े पैमाने पर विस्थापित हुई हैं और हो रही हैं। उदाहरण स्वरूप वाराणसी के आस-पास के सैकड़ों गाँव सीवेज प्लाण्ट, कूड़ा डम्पिंग प्लाण्ट और ट्रांसपोर्ट नगर बनाने के लिए, इलाहाबाद में करछना थाने के आठ गाँव जे.पी. ग्रुप के पावर प्लाण्ट के लिए अधिग्रहित किये जा रहे हैं। इस सभी भूमियों में सब्जियों की खेती सहित तीन से चार फसलें किसान लेते रहे हैं। विस्थापन की यही प्रक्रिया पूरे देश में चल रही है। इन विस्थापित किसान स्त्रियों के पास बीज उगाने, काटने, सुखाने, साफ-सफाई, खाने योग्य बनाने और आगामी फसल के लिए बीजरूप में तथा दुर्दिन में परिवार के भोजन के लिए संरक्षित रखने की विद्या सदियों से पीढ़ी दर पीढ़ी मिलती रही है। कीटनाशक और रसायन के युग में भी सुदूर गाँव की बड़ी उम्र की स्त्रियों से भण्डारण की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

कृषि के बाद स्त्रियों की बड़ी भागीदारी के क्षेत्र दस्तकारी के उद्योगों के रहे हैं। इसमें बड़ी संख्या बुनकरी के कार्यो से जुड़ी स्त्रियों की है। इसके अलावा कुम्हार, लोहार, सुनार, लकड़ी के काम करने वाले, आटा चक्की वाले, मल्लाह, धोबी, दर्जी, बेकरी के कार्य, चमड़ा उद्योग, बर्तन बनाने के उद्योगों में भी स्त्रियाँ लगी रही हैं। कच्चे माल का अभाव, बाजार में उत्पादित माल का वाजिब मूल्य न मिलना, बड़ी मशीनों के आविष्कार, अन्तर्राष्ट्रीय-राष्ट्रीय स्तर की मंदी ने दस्तकार के हाथ से उनके उद्योग छीन लिये। जिसके कारण ये सभी उद्योग सिमट गये और बचे-खुचे भी सिमटते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप इन कार्यों से जुड़ी स्त्रियाँ सहज ही अपने ज्ञान और कौशल्यपूर्ण कार्यों से विस्थापित हुई। इसे हम यूँ कहें कि इन उद्योगों में कुछ कार्य ऐसे हैं जो स्त्रियों की भागीदारी के बिना सम्पन्न ही नहीं हो सकते जैसे बुनकरी में कतान फेरना, नरी-ढोटा भरना, बूटी काढ़ना। कुम्हारी में आवाँ लगाना इत्यादि। इसके अतिरिक्त पूरे परिवार का लालन-पालन करना, बच्चे-बूढ़ों की देख-रेख, बीमार की सेवा-सुश्रुषा और सामाजिक रिश्ते के निर्वाह का कार्य स्त्री के बिना बहुत ही मुश्किल है। विस्थापन भँवर में उलझी स्त्री अपने परिवार के साथ अभिन्न रूप से इस समस्या से जूझ रही हैं।

सरकारी नीतियों ने किसानी छीनी और उनके उत्पादन को मूल्य नहीं देने का षड़यन्त्र रचा। कारीगर समाज को कच्चें माल, बाजार, बिजली, मूल्य से वंचित किया। परिवारों को अपने उद्योग, घर तथा समाज से विस्थापित होना पड़ा। अधिसंख्य विस्थापित लोग छोटी दुकानदारी, पटरी पर तरह-तरह की वस्तुयें बेचने ढाबे चलाने, गुमटी ठेले लगाकर चाय-चाट लगाने के कार्य और फेरी करने जैसे कार्यों से जुड़ गये। स्त्रियाँ भी ऐसे ही कार्यों में लगी। उदाहरण के लिये वाराणसी में कबीरचौरा, लंका, रेलवे स्टेशन कैंट, राजघाट, सिटीस्टेशन, कचहरी के आस-पास आसानी से देखा जा सकता है। परन्तु यहाँ भी उनके लिए लगह नहीं है। कहीं अतिक्रमण के जंजाल में, कहीं पूँजी और स्थान के अभाव के कारण ये लोग पुनः उजड़ रहे हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि उजड़े हुये ये परिवार और उनकी स्त्रियाँ घर-परिवार चलाने के लिए क्या करे? कहाँ जायें?

जंगल की भूमि पर कई पीढ़ियों से रहते आये आदिवासी अपने परिवार के साथ खेती-किसानी करके, जंगली फल-मेवे के संग्रह से अपनी जीविका चलाने के साथ-साथ जंगल की सुरक्षा भी करते रहे हैं। उनकी एक समृद्ध संस्कृति है। परन्तु विकास और रोजगार का लालच देकर और कहीं दमनपूर्वक उन्हें जल-जमीन-जंगल से हटाने का कुचक्र किया गया। उदाहरण के लिये सिंगरौली में पावर प्लाण्ट लगाने के लिये अनगिनत परिवारों को तीन-तीन बार उजाड़ा गया। अभी भी उजाड़े जाने की तलवार उनके सिर पर लटक रही है। सोनभद्र में कनहर बांध बनाने के लिये चालीस गाँव की बीस हजार आबादी उजड़ रही है। उजाड़ के विरोध में 1976 से सक्रिय रुप से बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष आन्दोलनरत हैं। ऐसे उदाहरण देशभर में कहीं भी मिल जायेंगे। जबकि आदिवासियों की संस्कृति में वन का स्थान ईश्वर के समान है। यहाँ पुनः यही यक्ष प्रश्न खड़ा है कि ये विस्थापित लोग कहाँ जाये, क्या करें?

आधुनिक युग में ज्ञान की हर विधा इंटरनेट में संकलित और उसी से संचालित हो रही है, यहाँ तक कि हमारे लोगों के पास की लोकविद्या भी। इसे हम इस तरह देख सकते हैं जैसे जैविक खेती और फेरी लगाकर वस्तुओं को बेचने का कार्य, जीवांश खाद और पौध से पौध बनाने की विद्या हमारे समाज में हजारों साल से है। आजादी के बाद वैज्ञानिक खेती और रासायनिक खादों के प्रयोग का इतना प्रचार-प्रसार किया गया कि हमारे देश में जीवांश खाद और पौध से पौध बनाने के ज्ञान वाली स्त्री-पुरुष की पूरी एक पीढ़ी पिछड़ी, अज्ञानी और बेवकूफ करार कर दी गयी और आज पुनः इंटरनेट विद्या से उसी का प्रचार-प्रसार हो रहा है, परन्तु उसका स्वरूप विकृत करके। फेरी का कार्य भी इंटरनेट के द्वारा हो रहा है। क्योंकि उत्पाद बेचने वाली कंपनियाँ नेटवर्किंग से सामान बेच रही हैं जैसे आ.सी.एम., एम-वे आदि और वित्त व्यवसाय के धंधे में स्पीक एशिया आदि। ये सब मिलकर पुनः नये सिरे से किसान, कारीगर, छोटे दुकानदार, आदिवासी और स्त्रियों को शोषण का नया रास्ता उन्हीं की विद्या-ज्ञान को संकलित करके उन्हीं लोगों के विरुद्ध बना रहे हैं। ये उजड़े समाज और उनकी स्त्रियां पुनः नये तरीके से उजड़ेगें। यह हम सबके चिन्तन का विषय है।

स्त्री सशक्तीकरण की अवधारणा हमारे समाज की उपज नही है। इसके सभी मुद्दे यथा उच्च शिक्षा, रोजगार, स्त्री-पुरुष समानता, स्त्री स्वतंत्रता, समान कार्य, समान वेतन, लिंग भेद इत्यादि मुद्दे हमारे देश में सन् 80 के दशक में आरम्भ हुये नारीवादी आन्दोलन से लिये गये हैं और इस आन्दोलन की जन्मभूमि पश्चिमी देश थे। इन मुद्दों पर हमारे विद्वानों ने भी पश्चिमी दृष्टिकोण से ही लिखा। सरकारें विभिन्न माध्यमों से इसका प्रचार प्रसार करती हैं। परन्तु इन मुद्दों में हमारे देश की बहुमत स्त्री आबादी के मूल्यों, समाज के साथ स्त्री के संबंधों, हितों और स्त्री दृष्टि का समावेश नहीं है। हमारे देश की किसानी -कारीगरी के उद्योगों में स्त्री -पुरुष परस्पर सहयोगी रहे हैं और परिवार में स्त्री की महत्वपूर्ण स्थिति रही है। अतः अलग से स्त्री स्वतंत्रता, आर्थिक आत्मनिर्भरता का प्रश्न ही नहीं था। हाँ, प्रगतिशील और सशक्तीकरण के नाम से ऊँची शिक्षा, ऊँची नौकरी और रोजगार की बात अवश्य की जा रही है। जबकि ऊँची शिक्षा प्राप्त सभी स्त्रियों को नौकरी नहीं मिल पा रही है और न रोजगार ही। एक तरफ स्त्री सशक्तीकरण की बातें होती हैं, दूसरी तरफ स्त्री अपने परिवार के साथ खेती-किसानी, उद्योगों और अपने समाज से विस्थापित की जा रही है। स्त्री सशक्तीकरण का यह विरोधाभास पचने लायक नहीं है। आज आधुनिक व्यवस्था की देन है कि स्त्री तरह-तरह की कम्पनियों के उत्पाद बेचने वाली एक चलती फिरती 'वस्तु' के रूप में स्थापित हो रही है। विस्थापित समाजों में रहने वाली स्त्री का विस्थापन अपने समाज से अलग नहीं है। यह विस्थापन मात्र स्त्री का नहीं है बल्कि समृद्ध समाज की ज्ञान संपदा और मूल्यों का हो रहा है।

विस्थापन से स्त्रियाँ मजदूर बन गईं–

1. सस्ते और अकुशल मजदूर के रुप में ईंट -भट्ठों पर न्यूनतम मजदूरी में कार्य करना।
2. शहरों-कस्बों में बनने वाली बहुमंजिली इमारतों पर ईंट-गिट्टी, गारा ढोने का काम करना।
3. पटरी या सड़क के किनारे छोटी-मोटी दुकानें लगा कर बैठना।
4. घरों में झाड़ू-पोछा, बर्तन साफ करने, कपड़ा धोने तथा अन्य कार्यों को करना।

अपने परिवार के अस्तित्व को बचाये रखने के लिये अनजानी जगहों में दूसरों की शर्तों पर कार्य करने वाली ये स्त्रियाँ हर पल हर दिन अपमानित और असुरक्षित होती हैं।

नये रास्ते की तलाश–

नारीवादी आन्दोलन धारहीन होकर बिखर चुका है और राजनीतिक दल उद्देश्य विहीन होकर राष्ट्रीय संपदा की लूट में अपनी हिस्सेदारी के लिये आपस में ही होड़ कर रहे हैं। राजनीतिक शून्यता की इस स्थिति में स्त्री अपने लोकविद्याधर समाजों के साथ ज्ञान आधारित नयी राजनीति का दावा पेश करे और आधुनिक व्यवस्थाओं को चुनौती दे।

विस्थापन और विकास की प्रक्रिया और परिणामों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो चुका है कि वही समुदाय (किसान, कारीगर, छोटे उद्यमी, आदिवासी और स्त्रियाँ) विस्थापित हुये हैं और हो रहे हैं जिनके पास ज्ञान का अकूत भंडार है। अतः नये समाज के निर्माण के लिये संघर्ष का आधार विस्थापित समाजों की विद्या (लोकविद्या) की प्रतिष्ठा में निहित है। सभी विस्थापित समाजों की अभिन्न अंग स्त्री ज्ञान की राजनीति की इस लड़ाई में अपने पुरुषों के साथ खड़ी है।

'नये समाज की संरचना की कसौटी लोकविद्या है'

आओ मिलजुल कर अलख जगायें
हमें हमारे ज्ञान का सम्मान चाहिये,
हमें हमारे कार्यक्षेत्र चाहिये,
दमन प्रताड़ना से हम डरती नहीं,
जहाँ हमारे साथी होंगे, हम वहीं खड़ी।

●

विकास और विस्थापन

देवाशीष प्रसून

भारत में शुरू से ही विकास के नाम पर गरीबों का अपने जमीन व पारम्परिक रोजगारों से विस्थापन हुआ है। सरकार ने अपने कामों की फेहरिश्तों में विकास को सबसे अव्वल रखा है। देश में होनेवाले विकास का सुख चाहे कोई भी उठाए, पर हम देख सकते हैं कि इसका मूल्य समाज के कमजोर तबके को ही चुकाना पड़ता है। मामला बाँध बनाने का हो, औद्योगीकरण या सेज़ का या शहरीकरण का, इसके लिए आवश्यक जमीनें अक्सर गरीबों और आदिवासियों से ही अधिग्रहित की जाती हैं। इसके विरोध में, हमारे सामने लालगढ़, नन्दीग्राम, सिंगूर, कलिंगनगर, रायगढ़ और नर्मदा बचाओ जैसे जन-आन्दोलनों के कई उदाहरण मौजूद हैं। इन आन्दोलनों को विकास के अन्तर्विरोध के रूप में देखा जा सकता है। वैसे तो देश में गरीबों, दलितों व आदिवासियों के हित के लिए, मानवाधिकार की रक्षा के लिए और जनकल्याण को ध्यान में रखकर कई कानून बनाये गये हैं, लेकिन असल धरातल पर बड़े-बड़े निगमों के हित के सामने ये अमूमन धरे के धरे रह जाते हैं। जंगलों को हथियाने के लिए बड़े बेरहमी से आदिवासियों को बेदखल किया गया जो आज भी मुसलसल जारी है। आंकड़े बताते हैं कि सन '47 से सन् 2000 के बीच सिर्फ बाँधों के कारण लगभग चार करोड़ लोग विस्थापित हुए हैं, अन्य विकास परियोजना के आंकड़े अगर इसमें जोड़ दिए जायें तो विस्थापन का और भयानक चेहरा देखने को मिलेगा। विकास के इस महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य को हासिल करने में रफ्तार पकड़ रही विकास की गाड़ी न जाने कितने गरीबों के घरों को हमेशा-हमेशा के लिए रौंद कर बेरोक-टोक आगे बढ़ रही है। नियमों को सरमायापरस्त ताकतों के हक में तोड़ना-मरोड़ना और इसका विरोध करने पर मानवाधिकारों के उल्लंघन की खबरें आना आम बात है।

औद्योगीकरण, शहरीकरण, बाँध, खनिज उत्खनन और अब सेज़ जैसे पैमानों पर विकास की सीढ़ियों पर नित नये मोकाम पाने वाले हमारे देश में इस विकास के राक्षस ने कितना हाहाकार मचाया है, यह शहर में आराम की जिन्दगी जी रहे अमीर या मध्यवर्गीय लोगों के कल्पना से परे है, पर देश में अमीरी और गरीबी के बीच बढ़ता दायरा इस वीभत्स स्थिति की असलियत चीख-चीख कर बयान करता है। बतौर बानगी, देश में बहुसंख्यक लोग आज भी औसतन बीस रुपये प्रतिदिन पर गुजर-बसर कर रहे हैं और दूसरी ओर कुछ अन्य लोगों के बदौलत भारत दुनिया में एक मजबूत अर्थव्यवस्था के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहा है। अलबत्ता, सरकार अपनी स्वीकार्यता बनाये रखने के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी सरीखे योजनाएँ भी लागू करती है। पर, इस तरह की योजनाओं का व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के चलते क्या हश्र हो रहा है, सबको पता है और फिर भी अगर सालभर में सौ दिन का रोजगार मिल भी जाये तो बाकी दिन क्या मेहनतकश आम जनता पेट बाँध कर रहे? हमारी सरकार विकास को शायद इसी स्वरूप में पाना चाहती है?

एक और सरकारी दस्तावेज का उद्धरण लें। भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय ने एक आयोग का गठन किया, जो यह जायजा लेता कि भू-सुधार के अधूरे कामों के मद्देनजर राज्य के कृषि सम्बन्धों की अभी क्या स्थिति है? माननीय ग्रामीण विकास मंत्री की अध्यक्षता में काम कर रहे इस आयोग द्वारा मार्च, '09 में ड्राफ्ट किये गये रपट के पहले भाग के चौथे अध्याय में जिक्र है कि छत्तीसगढ़ के दक्षिणी जिलों—बस्तर, दंतेवाड़ा और बीजापुर में गृहयुद्ध जैसी स्थिति है। इसमें एक तरफ, आदिवासी लोग जंगल पर अपने अधिकार को बनाये रखने के लिए लड़ रहे हैं और दूसरी तरफ, सरकार के प्रोत्साहन पर केन्द्रीय पुलिस बल और उसके द्वारा समर्थित सलवा जुडूम अपनी नौकरी बजा रहे हैं। रपट में अपनी जमीन के लिए संघर्षरत आदिवासियों को ही भाकपा (माओवादी) के सदस्य के रूप में सम्बोधित किया गया है। उल्लेखनीय है कि यह सरकारी दस्तावेज कहता है कि यह पूरा खूनी खेल टाटा स्टील और एस्सार स्टील के इशारे पर लौह अयस्क से सम्पन्न सात गाँवों व आसपास के इलाकों का अधिग्रहण करने हेतु खेला जा रहा है। ये कोलम्बस के बाद आदिवासी जमीन की लूट-खसोट का सबसे बड़ा मामला है। ये वाक्य मैं नहीं कह सकता। सच मानिये लूट-खसोट का यह आरोप उपरोक्त बताये गये ड्राफ्ट रपट से ही उद्धृत है। आश्चर्य है कि यहाँ जिस ड्राफ्ट रपट का जिक्र हो रहा है, इसका अन्तिम स्वरूप जब अधिकृत रूप में प्रस्तुत किया गया तो रपट का उपरोक्त पूरा हिस्सा ही गायब था। बहरहाल, आदिवासियों को उनके आजीविका के साधनों, जीवन का आधार और अविवादित रूप से उनकी अपनी सम्पत्ति—इन जंगलों से महरूम करने के पीछे किसका हित है और किसका अहित, यह जगजाहिर है।

विकास के इस साम्राज्यवादी मुहिम में उलझे अपने इस कृषिप्रधान राष्ट्र में आज खेती की इतनी बुरी स्थिति के लिए कौन जिम्मेवार है? विदेशी निगम के हितों को ध्यान में रखकर वैश्विक दैत्याकार प्रतिष्ठानों के शह पर हुई हरित क्रान्ति अल्पकालिक ही रही। जय किसान के सारे सरकारी नारे मनोहर कहानियों से अधिक कुछ नहीं थे। खेती में अपारम्परिक व तथाकथित आधुनिक तकनीकों के प्रवेश ने किसानों को बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयों व सिंचाई, कटाई और मड़ाई

... शेष पृष्ठ 7 पर

लोकविद्याधर समाज की एकता में ही विस्थापन रोकने की ताकत है

विस्थापन आज की दुनिया का एक बहुत बड़ा और आक्रामक सच है। चारों तरफ विस्थापन की ही गूँज है। किसानों की जमीनों का अधिग्रहण, आदिवासियों का अपनी जमीनों व जंगलों से खदेड़ा जाना, ठेले-पटरी की दुकानों पर बुलडोजर चलना, स्थानीय उद्योगों, सेवाओं व मनोरंजन के आधुनिकीकरण से कारीगरों का काम छीना जाना, यही आज की सबसे बड़ी वास्तविकता है।

विस्थापन के विरोध में देश के अनेक हिस्सों में बड़े-बड़े जन प्रतिरोध खड़े हुए हैं। विस्थापित समुदाय लड़ रहे हैं। पुलिस और प्रशासन पूँजीपतियों के साथ मिलकर उन पर जुल्म ढा रहे हैं, लाठी-गोली बरसा रहे हैं। सभी राजनीतिक दलों में सहमति है कि विस्थापन अनिवार्य है। वे समझते हैं कि इसके बिना विकास सम्भव नहीं है। पढ़े-लिखे वर्ग भी ऐसे ही 'विकास' में अपना भविष्य देख रहे हैं।

विस्थापन के जरिये सत्ता और उस पर काबिज वर्ग संसाधनों पर कब्जा करते हैं, बाजार पर कब्जा करते हैं, सस्ते मजदूरों की फौज तैयार करते हैं और जन-जीवन तथा लोक विद्या के बीच अलगाव पैदा करते हैं। पैसे वाले लोगों के लिए सुरक्षा के घेरे में एक ऐशो-आराम और सैर-सपाटे की उच्छृंखल दुनिया बनाई जा रही है और इसके लिये लोकविद्याधर समाज को अपने स्थानों और धंधों से विस्थापित किया जा रहा है।

अधिकांश लोग अपनी विद्या (लोक विद्या) के बल पर अपना जीवन चलाते हैं। लोकविद्या और स्थानीय संसाधनों के बीच का रिश्ता किसानों, कारीगरों, आदिवासियों और छोटा धंधा करने वालों के परिवारों की जीवनरेखा होता है। प्राकृतिक संसाधनों का क्षय न होने देने की जिम्मेदारी ये ही निभाते आये हैं। ये समाज लगभग पूरे के पूरे आधुनिक शिक्षा से वंचित हैं और लोकविद्या के स्वामी हैं, इन्हें ही लोकविद्याधर समाज कहा जाता है। विस्थापन में लोकविद्याधर समाज के लिए एक नई गुलामी का पैगाम है। विस्थापन विरोधी संघर्षों के साथ लोकविद्याधर समाज में व्यापक आपसी एकता के नये सूत्र अस्तित्व में आये हैं।

विस्थापन विरोधी संघर्षों के जरिए लोकविद्याधर समाज में व्यापक आपसी एकता स्थापित करने के युगांतरकारी मौके पैदा हुए हैं। इसी एकता के बल पर लोकविद्याधर समाज शोषण, गरीबी और पूँजी की सत्ता की स्थितियों को पूरी तरह बदल दे सकता है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं को यह मौका पहचानना होगा। यह पहचानना होगा कि विस्थापन के खिलाफ संघर्ष और लोकविद्या के बीच का रिश्ता इस दुनिया को बदलने और बराबरी की एक दुनिया बनाने का सैद्धान्तिक और व्यवहारिक आधार देता है।

विस्थापन के सक्षम विरोध का आधार लोकविद्या के बल पर जीने और समाज संगठित करने के मूल्य में ही हो सकता है। इसी मूल्य में पूरे लोकविद्याधर समाज यानि किसानों, कारीगरों, आदिवासियों और छोटे-छोटे व्यवसाइयों के बुनियादी अधिकार और कर्तव्य निहित हैं।

लोकविद्या के बल पर जीने के अधिकार को संवैधानिक अधिकार का दर्जा मिलना चाहिये।

लोकविद्या के बल पर जीने के अधिकार में निम्नलिखित निहित हैं—

- जीवन का मुख्य आधार प्राकृतिक संसाधनों में है।
- ज्ञान मनुष्य का प्राकृतिक गुण है।
- किसी को भी उन संसाधनों से अलग नहीं किया जा सकता, जिनका उपयोग वह जीवनयापन के लिए अपने ज्ञान के बल पर करता है।
- संसाधनों से अलग करना मनुष्य को उसके ज्ञान से अलग करने के बराबर है।
- ये मनुष्य समाज के अलिखित सिद्धान्त हैं।

लोकविद्या के आधार पर जीवनयापन का अधिकार मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।

•

अरब देशों में हलचल

अरब देशों में घमासान जारी है। कई देशों में वहाँ बीसों साल से एक किस्म का शासन संगठित है, जिसके साथ यूरोप और अमेरिका के प्रभावी देशों के अच्छे सम्बन्ध रहे हैं। तुनीसिया और इजिप्त में पहले विरोध हुए। शहरों की सड़कों पर बड़ी तादाद में नौजवान उतर आये और बेन अली और होस्नी मुबारक के शासन को उखाड़ फेंकने के आन्दोलन हुए। दोनों ही जगह पहले चरण की सफलता हासिल हुई है। यमन, बहरीन और सीरिया में भी लगातार जन-प्रतिरोध संगठित हो रहे हैं। इन स्थानों पर शासनों ने बेहद आक्रामक रुख अपनाया और खुलेआम आन्दोलनकारियों का दमन करने के लिए गोलीबारी की है और बड़े पैमाने पर लोगों को मारा है। ऐसा नहीं लगता है कि बदलाव की इस बयार को ये शासन रोक पायेंगे। कितना और कैसा बदलाव होगा यह तो समय ही बतलायेगा। अंग्रेजी अखबारों और इण्टरनेट पर आनेवाली खबरें लोकतंत्र का विचार और इंटरनेट व मोबाइल के मार्फत सम्पर्क इन दोनों में इन आन्दोलनों की धुरी है, ऐसा बता रही हैं। इराक और अफगानिस्तान व उत्तर-पश्चिम पाकिस्तान में अमेरिकी आक्रमण और इन युद्धों में अमेरिकी शक्ति का नया आधार भी सूचना प्रौद्योगिकी में ही बताया जाता है। और विचार के स्तर पर इस्लामी उग्रवाद का विरोध लोकतंत्र के नाम पर ही किया जाता है। इस तरह अरब दुनिया पर बाहरी आक्रमण तथा वहाँ चल रही परिवर्तन की हलचल दोनों का ही आधार लोकतंत्र के विचार और सूचना प्रौद्योगिकी में बताया जा रहा है।

लीबिया पर अमेरिका, इंग्लैण्ड और फ्रांस ने हवाई हमला कर दिया। यह कहा गया कि कर्नल गद्दाफी की सेना विद्राहियों पर हवाई आक्रमण कर रही है और उसे रोकने के लिए उनके लड़ाकू विनाम भेजे गये। कहने को सुरक्षात्मक पहल थी लेकिन पश्चिमी ताकतें अपने लड़ाकू विमानों से बमबारी करती रहीं। पहले दौर में गद्दाफी की सेनायें भारी पड़ी हैं और पश्चिमी ताकतें बगले झाँकती और एक-दूसरे की गतिविधि पर असंतोष जाहिर करती नजर आईं। यहाँ भी वहीं बात है। अमेरिका, इंग्लैण्ड और फ्रांस लोकतंत्र के रक्षकों के रूप में सामने आये हैं, लोकतांत्रिक जनता के सहयोग के नाम पर सैन्य दखल को आकार दिया है और सूचना प्रौद्योगिकी के आधार पर विकसित सम्पर्क, संचार, खुफिया तंत्र के आधुनिकतम रूपों का इस्तेमाल कर रहे हैं।

1990 में जब अमेरिका ने कुवैत की आजादी के लिए इराक में अपनी सेना भेजी थी तब उसे खाड़ी युद्ध का नाम दिया गया। इसी खाड़ी युद्ध से दुनियाभर में एक नई व्यवस्था लागू करने के प्रयास शुरू हुए, जिसका सबसे पहला और प्रकट चिह्न यह था कि दुनिया में कहीं भी कुछ भी हो, अमेरिका उसमें दखल लेगा, जिसमें फौजी दखल शामिल है। इस पर बहुत कुछ लिखा गया है। कहा गया कि यह एक नया साम्राज्य बन रहा है। यह साम्राज्य 19वीं व 20वीं सदी के साम्राज्यवाद से अलग है। इसकी आर्थिक और राजनैतिक संरचना दोनों ही अलग है। पुराने सामंतवाद और साम्राज्यवाद को चुनौती देने वाले विचारों में 'लोकतंत्र' एक विचार है। आजादी को लोकतांत्रिक व्यवस्था या स्वराज्य के रूप में परिभाषित किया जाता रहा। चूँकि लोकतंत्र यूरोप में जान्मा विचार ही था इसलिए आजाद देशों के लोकतंत्र के साथ काम करने में पश्चिमी देशों को कोई दिक्कत नहीं आई। और ये लोकतांत्रिक व्यवस्थायें उनके समर्थन की व्यवस्थायें बन गई। अब यह लोकतंत्र का विचार इस नये साम्राज्य के प्रमुख राजनैतिक विचार के रूप में उभरा है। दुनिया के किसी भी कोने में अमेरिका और पश्चिमी देशों की दखलंदाजी लोकतंत्र के नाम पर ही की जा रही है। और इसे अब एक नया औजार मिल गया है—सूचना प्रौद्योगिकी का। यह मात्र एक औजार या तकनीक नहीं है बल्कि समाज की व्यवस्था में एक नई श्रेणीबद्धता यानी ऊँच-नीच कायम करने की विधा है। इसके आधार पर दुनियाभर के अभिजात्य वर्ग एक आपसी एकता बनाते हैं और दुनियाभर के किसानों, आदिवासियों, कारीगरों, छोटा-छोट धन्धा करने वालों और अन्य तमाम सामान्य लोगों के ऊपर लोकतंत्र के नाम पर शासन की व्यवस्थायें बनाते हैं।

आज दिल्ली की सत्ता जो आदिवासियों और किसानों को बड़े पैमाने पर उजाड़ने का काम कर पा रही है उसका वैचारिक आधार वही है जो अमेरिका द्वारा बनाये जा रहे नये साम्राज्य का वैचारिक आधार है। लोकतंत्र के नाम पर किये जा रहे युद्धों में लाखों लोग मारे जा चुके हैं और दुनियाभर के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे की युद्धस्तरीय मुहिम चल रही है।

आशा है कि अरब देशों में चल रही हलचल लोकतंत्र के विचार का सहारा न लेकर अपने शब्दों में किसी किस्म के स्वराज की बात करेंगी। इससे अन्य मुल्कों में भी साम्राज्य के दबदबे के खिलाफ खड़े होने की स्वराजमूलक दिशाओं को बल मिलेगा।

•

भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन : अनिवार्यतायें और खुलते रास्ते

जंतर मंतर पर अप्रैल के शुरू में चार दिन चले अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी उपवास के दौरान वहाँ हजारों की तदाद में लोग इकट्ठा हुए और तमाम शहरों और कस्बों में लोगों ने इकट्ठा होकर, जुलूस निकालकर सभायें करके और अनशन पर बैठकर आन्दोलन में भागीदारी की। मीडिया ने आन्दोलन का भरपूर साथ दिया। अखबार और टेलीविजन के समाचार चैनल आन्दोलन की खबरों से रंगे रहे। इण्टरनेट पर भी समर्थन का दौर चला। अन्ना हजारे आन्दोलन के निर्विवाद नेता हैं।

भ्रष्टाचार इस आन्दोलन का मुद्दा है। जन लोकपाल विधेयक बनाने और उसे संसद द्वारा कानून का जामा पहनाने का उद्देश्य लेकर चले इस आन्दोलन ने इस विधेयक का प्रारूप बनाने के लिये समाज और सरकार की बराबर की भागीदारी की एक दस सदस्यीय समिति बनवाने और उसके लिये एक समयबद्ध कार्यक्रम की सफलता शुरू में ही हासिल भी कर ली है।

एक बड़ी बहस छिड़ गई है कि यह कैसा आन्दोलन है और इसका क्या नतीजा निकलेगा। एक तरफ यह कहने वाले लोग हैं कि सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार से हर व्यक्ति इतना परेशान है कि जंतर मंतर पर अन्ना क्या बैठे कि पूरे देश में एक स्वयंस्फूर्त आन्दोलन खड़ा हो गया। सैंकड़ों संगठनों और समूहों ने बिना किसी के बुलाये अपना समझ कर इस आन्दोलन के समर्थन में जो शिरकत की उससे एक जन आन्दोलन खड़ा हो गया है। यह मानते हुए कि भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत गहरी है, और यह आर्थिक राजनैतिक व्यवस्था का ही एक अंग है, इसलिये व्यवस्था के प्रश्न भी हल करने होंगे। राजनीति, प्रशासन, कम्पनियाँ, पूँजीपति घराने, मीडिया, ठेकेदार, डाक्टर, इंजीनियर, वकील, शिक्षा के व्यवस्थापक सभी भ्रष्ट हो चुके हैं और लोकायुक्त और लोकपाल की किसी संवैधानिक व्यवस्था मात्र से भ्रष्टाचार दूर नहीं हो जायेगा। लेकिन एक ऐसी शरूआत जरूर हो सकती है जो आगे किसी बड़े मुकाम तक जाये।

आक्षेप और संदेह के स्वर भी कम नहीं है। ऐसा कहने वाले भी हैं कि आन्दोलन पर अंग्रेजी परक लोग और व्यवसायिक हितों के पक्षधर हावी रहे हैं। बड़े पूँजीपतियों और कम्पनियों के तमाम संगठनों ने आन्दोलन को समर्थन दिया है। आन्दोलन को इतना बड़ा दिखाने का काम मीडिया ने किया है।

किसानों, आदिवासियों, और दलितों की आवाज या कोई भागीदारी तो इसमें है नहीं। इन समाजों का प्रतिनिधित्व करने वाले या उन्हें नेतृत्व देने वाले संगठन और समूह भी आन्दोलन में कहीं दिखाई नहीं दे रहे। भाजपा और हिन्दुत्ववादी संगठनों के लोग जरुर आगे-आगे दिखाई देते हैं। तमाम शहरों के व्यापारिक संगठनों और व्यवस्थापरक गैर सरकारी संस्थाओं का समर्थन भी आन्दोलन को मिला है। भ्रष्टाचार के अलावा जिन मुद्दों पर 1974 के बिहार आन्दोलन और बाद के जन आन्दोलनों ने ध्यान केन्द्रित किया, जैसे बेरोजगारी, शिक्षा में सुधार, विस्थापन, साम्प्रदायिकता, किसान और आदिवासी हित, उनमें से कोई भी इस आन्दोलन में अभी तक चर्चा में नहीं आया है। इस आन्दोलन पर यह आरोप तक लग चुका है कि यह आरक्षण विरोधियों का जमावड़ा है और नव ब्राह्मणवाद को स्थापित करने का एक जरिया।

समर्थन और आक्षेप दोनों की ही बातें बहस की स्थिति में है। सामाजिक कार्यकर्ता अपने विश्लेषण के बल पर भविष्यवाणी नहीं किया करते बल्कि सही मुद्दों और व्यापक भागीदारी के रास्ते खोजते हैं और उन पर काम करते हैं। इस दृष्टिकोण से हम दो बातों पर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

पहली यह कि आय की सीमा बाँधे बगैर भ्रष्टाचार खत्म करना संभव नहीं है। संतों और समाज सुधारकों ने हमेशा ही बड़े पैसे में बुराई के स्रोत देखे हैं। गैर बराबरी के खिलाफ खड़े सामाजिक आन्दोलनों ने न्यूनतम और अधिकतम आय के बीच का अनुपात 1:5 या 1:10 में सीमित करने की बात की है। भूमि सुधार ने जमीन की मिल्कियत के बल पर आर्थिक और सामाजिक सत्ता की संभावनायें खत्म कर दी। शहरी सम्पत्ति पर ऊपरी सीमा बाँधने पर बहसें हमेशा ही होती रही हैं। सरकारी महकमों में राष्ट्रपति की आय ऊपरी सीमा होती ही है। सभी की आय की ऊपरी सीमा यही हो, इसमें क्या आपत्ति हो सकती है? डेढ़ लाख रुपये प्रति माह से ज्यादा किसी को मिले इसकी कोई जरूरत नहीं। यह करोड़ों की कमाई की छूट और उसके लिये अनुकूल सरकारी नीतियों ने सबको भ्रष्ट कर दिया है। सामान्य जिन्दगी पर ऐसे रोजमर्रे के दबाव ले आये गये हैं कि केवल ईमानदारी भर से जीने के लिये क्रांतिकारी स्वभाव और चेतना की जरूरत है। भ्रष्टाचार खत्म करने की हर ईमानदार कोशिश को आय की सीमा बाँधने की बात करनी ही पड़ेगी। और अगर यह सीमा आज की तारीख में एक बहुत ऊँचे पद का सरकारी अफसर जितना वेतन पाता है, उससे भी ज्यादा हो, तो इस विचार का ही मखौल उड़ जायेगा।

दूसरी बात यह है कि इस आन्दोलन ने जो सफलता पहले चार दिन में हासिल कर ली, उसे हम जरा ध्यान से देखें। समाज के प्रतिनिधियों और सरकारी नुमाइंदों की एक बराबर की भागीदारी की समिति बन गई। इसका अर्थ यह है कि शासन के मामले में समाज और राजनैतिक व्यवस्था के प्रतिनिधि बराबरी की हैसियत से मिलकर काम करेंगे तो ज्यादा अच्छा नतीजा निकलेगा। इसमें लोकोन्मुख शासन और स्वच्छ प्रशासन की कुँजी है। न्याय संगत समाज के लिये संघर्ष करने वाले हमेशा संसदीय लोकतंत्र और राजनैतिक दलों की व्यवस्था को मजबूरी में मान्यता देते रहे हैं। न परिवर्तन की किसी विचारधारा में इसे सम्मान है और न परिवर्तन के कार्यकर्ता ही इसमें विश्वास रखते हैं। समाज को यह बहुत भारी पड़ता है कि केवल उन्हें ही लोक प्रतिनिधि माना जाय जो विधायिकाओं के लिये चुनकर आते हैं । भारत के आजादी के आन्दोलन में गाँधी जी ने सतत् उन प्रक्रियाओं का निर्माण किया जो समाज और राजनैतिक व्यवस्थाओं के बीच संतुलन बनाकर रख सके। जय प्रकाश नारायण ने 1974 के आन्दोलन के दौरान निर्दलीय लोकतंत्र का विचार दिया, किंतु उसके कोई स्पष्ट खाका उस वक्त नहीं बन सका। विचार की यही धारा है जिसे आगे बढ़ाने के मौके हमें इस आन्दोलन में दिखते है। क्या देश के किसानों, आदिवासियों और तमाम शोषित व उत्पीडित वर्गों को न्याय के लिये संगठित करने वाले और संघर्ष करने वाले व्यक्ति जनता के प्रतिनिधि नहीं माने जाने चाहिये? क्या वे चुनाव लड़कर जीतकर दिखायें, तभी उन्हें लोक प्रतिनिधि माना जायेगा? इस व्यवस्था और इस सोच ने इस समाज के सुधार के सारे रास्ते बन्द कर दिये हैं। जैसी संयुक्त समिति भ्रष्टाचार पर नियंत्रण के लिये और जन लोकपाल विधेयक के लिये बनाई गयी है, वैसी ही संयुक्त समितियों की जरूरत विस्थापन, शिक्षा में सुधार, नौजवानों के लिये रोजगार, साम्प्रदायकिता, संसाधनों पर नियंत्रण जैसे उन सभी विषयों पर बननी चाहिये जो दशकों से जन आन्दोलनों के मुद्दे रहे हैं।

भ्रष्टाचार उन्मूलन के सवाल पर दो राय नहीं हो सकती, लेकिन यह तो बार-बार होता है कि अच्छी-अच्छी बातें करके जन मानस और व्यवस्थाओं पर कब्जा किया जाता है और फिर ठीक उल्टे काम किये जाते हैं। अगर दलितों, किसानों, आदिवासियों, कारीगरों और मजदूरों का दर्द न समझने वाले और उनके संघर्षों से कोई रिश्ता न रखने वाले भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन पर काबिज रहते हैं तो अच्छे नतीजों की उम्मीद करना तो दूर, ठीक उल्टे नतीजे भुगतने पड़ेंगे।

•

विद्या आश्रम की राष्ट्रीय बैठक

लोकविद्या जन आन्दोलन की दूसरी तैयारी बैठक

27-28 फरवरी 2011, हैदराबाद

हैदराबाद के बेगमपेट इलाके में जीवन ज्योति रिट्रीट हाउस में 27-28 फरवरी को यह बैठक सम्पन्न हुई। 40 भागीदारों की इस बैठक में पहले दिन वैचारिक बिन्दुओं पर चर्चा हुई और दूसरे दिन लोकविद्या जनआन्दोलन के निर्माण के सवाल पर। विद्या आश्रम से जुड़े हुए लोग तो उपस्थित थे ही पर उसके अलावा नालेज इन सिविल सोसाइटी, सेंटर फार रिसोर्स एजुकेशन, प्रयास, लाइफ एच.आर.जी. हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय और आई.आई.टी. से भागीदारी रही। वर्धा, नागपुर, पुणे, बलसाड़, इन्दौर, दिल्ली, सिंगरौली, वाराणसी बैंगलोर, भुवनेश्वर, विशाखापट्टनम, विजयवाड़ा और हैदराबाद से कार्यकर्ता और विचारक आये थे। कोलकाता के मित्र नहीं आ सके लेकिन अपने विचार उन्होंने लिखकर भेजे। ''लोकविद्या जनआन्दोलन के संगठनकर्ताओं को यह अच्छा मौका मिला जिसमें वे इन कार्यकर्ताओं व विचारकों से आमने-सामने बहस कर सकें। बहस ज्यादातर लोकविद्या के इर्द-गिर्द चलती रही तथापि लोकविद्या की परिवर्तन की राजनीति कैसी होनी चाहिये इस पर तरह-तरह के विचार आये। दार्शनिक और व्यावहारिक पक्ष एक-दूसरे के साथ जुड़कर सामने आये और लोकविद्या कैसे लोगों के ज्ञान आन्दोलन का आधारभूत विचार हो सकता है इस पर चर्चायें हुई।

विद्या आश्रम द्वारा लोकविद्या जन आन्दोलन के लिये प्रस्तावित राह पर मोटी सहमति बनी और यह भी तय हुआ कि बहस जारी रहनी चाहिये। बैठक में लिये गये फैसले नीचे दिये जा रहे हैं—

1. लोकविद्याा जनआन्दोलन का पहला महाधिवेशन वाराणसी में नवम्बर 2011 में हो।
2. जगह-जगह लोकविद्या आश्रम बनाये जायें। जहाँ-जहाँ लोकविद्या कार्यकर्ता हैं वहाँ से ये शुरू होने चाहिये। ये स्थान हैं- सिंगरौली, इन्दौर, आन्ध्र प्रदेश, विदर्भ और वाराणसी। इस पर बात करने के लिए इन्दौर में मई/जून 2011 में एक बैठक की जाय।
3. दस्तकारी के विभिन्न मूर्तिशिल्प, जो दस्तकारों के जीवन, हुनर और ज्ञान को प्रदर्शित करते हैं, को इकट्ठा करके एक लोकविद्या कला यात्रा बनाई जाय जो आन्ध्र प्रदेश से शुरु होकर महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश जाये।
4. इस लोकविद्या कला यात्रा के साथ एक सांस्कृतिक पहल को आकार दिया जाय।
5. एक दर्शन समिति बनाई जाय, जिसके शुरूआती सदस्य डा0 के0के0 सुरेन्द्रन पुणे, डा0 जे0के0 सुरेश बैंगलोर, अविनाश झा दिल्ली होगें।
6. एक प्रकाशन समिति बनाई जाये, जिसके शुरुआती सदस्य डा0 चित्रा सहस्रबुद्धे वाराणसी, डा0 बी0 कृष्णराजुलु हैदराबाद और डा0 गिरीश सहस्रबुद्धे नागपुर होंगे।
7. नवम्बर 2010 में वाराणसी बैठक में बनाई गई संगठन समिति एवं प्रस्ताव समिति सक्रिय की जाये। प्रस्ताव समिति का संयोजन डा0 बी0 कृष्णराजुलु करेंगे तथा संगठन समिति का संयोजन विद्या आश्रम के पास होगा।
8. लोकविद्या पंचायत का प्रकाशन जारी रखा जायेगा तथा तेलुगु और मराठी के प्रकाशन तैयार किये जायें।
9. लोकविद्या जन आंदोलन ब्लाग जारी रखा जाय तथा इस पर कार्यक्रम सम्बन्धित, राजनीतिक और दार्शनिक मुद्दों पर चर्चाओं को आकार दिया जाय।
10. लोकविद्या कार्यकर्ता जिम्मेदारी के साथ काम करने के लिये लोगों के बीच जाते रहने चाहिये।
11. जन संगठनों से सम्पर्क और उनके अन्तर्गत कार्य यह लोकविद्या जन आन्दोलन का प्रमुख रास्ता है।

•

बाजार मोड़ो - खुशहाली लाओ

इन्दौर में 2 जून, 2011 को लोकविद्या जन आन्दोलन की तीसरी तैयारी बैठक होने जा रही है। पहली तैयारी बैठक वाराणसी में 20-21 नवम्बर, 2010 को तथा दूसरी तैयारी बैठक हैदराबाद में 27-28 फरवरी, 2011 को हो चुकी है।

इन्दौर में होने वाली इस बैठक में लोकविद्या जन-आन्दोलन के वैचारिक प्रस्ताव व कार्यक्रम पर बात होगी। इसके अलावा स्थानीय बाजार की विचार व अभियान पर मुख्य रूप से बात होगी। इस चर्चा के लिए एक आधार पत्र बनाया गया है जिसे हम नीचे दे रहे हैं। पाठकों से उनके विचार आमंत्रित हैं एवं इन्दौर में बैठक में शामिल होने का निमंत्रण भी है।

आज के बाजार का रुख अमीरों की ओर है। यानि बाजार वह ढलान है जहाँ से हर किसान, कारीगर और आदिवासी की मेहनत से पैदा पैसा अमीरों की ओर बह जाता है। छोटी पूँजी से धन्धा करने वाले दुकानदारों का हश्र भी यही है।

हम अपना हर सामान सस्ते में बेचने के लिए मजबूर होते हैं और अपनी आवश्यकता का सामान हमें महँगा खरीदना पड़ता है। इसी में हमारी गरीबी का राज है। इसलिए गरीबी खत्म हो, इसके लिए जरूरी है कि इस बाजार द्वारा हो रहा पूँजी का बहाव रुके। इसके लिए बाजार को मोड़ना जरूरी है। बिना बाजार मोड़े खुशहाली का रास्ता खुलता नहीं है।

सस्ती बिक्री

कृषि उत्पादन का सरकारों, कारखानों और बड़े-बड़े व्यापारियों द्वारा खरीदा जाना, मुआवजा देकर हमें हमारी जमीनों से विस्थापित करना, घरों और छोटे-छोटे कारखानों में कपड़ा बुनना व तरह-तरह के सामान व पुर्जे बनाना, ईंट-भट्ठों और इमारतों के निर्माण में मिस्त्री और मजदूर का काम करना, ऐसे अनेक व्यवहार हैं जिनमें हम अपने ज्ञान और श्रम के बल पर बनाया हुआ सामान सस्ते से सस्ता बेचने को मजबूर होते हैं।

महँगी खरीद

दूसरी ओर कम्पनियों से बनकर आने वाला सामान जेसे जूता, कपड़ा, डबल रोटी, बिस्कुट, सीमेन्ट, ईंट, खाद, बीज, कीटनाशक, मोबाइल, कम्प्यूटर सभी कुछ बहुत महँगा बिकता है। बिजली, बैंक का कर्ज, शिक्षा और चिकित्सा भी इसमें शामिल है। कम्पनियों के ऐसे भी सामान हैं जो बहुत सस्ते मिलते हैं। जैसे टेरिलीन की साड़ी व सूट का कपड़ा और प्लास्टिक के चप्पल, बर्तन आदि लेकिन ये सामान बेहद घटिया सामग्री से बनाये होते हैं और हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होते हैं।

सस्ती बिक्री और महँगी खरीद ही हमें गरीब बना रही है और पैसे वालों को और अमीर।

हमारे संघर्ष

इस बाजार से मुकाबले के संघर्ष होते रहते हैं। 1960 के दशक का 'दाम बाँधो' आन्दोलन, 1980 और 90 के दशक का कृषि उपज का दाम माँगने वाला किसान आन्दोलन, अधिग्रहण के खिलाफ और मुआवजे में बढ़ोत्तरी के किसान और आदिवासी आन्दोलन, बुनकरों व अन्य कारीगरों के उचित मजदूरी के आन्दोलन, निर्माण क्षेत्र के मिस्त्रियों और मजदूरों के मजदूरी वृद्धि के आन्दोलन, महँगाई विरोधी आन्दोलन, शिक्षा और चिकित्सा के निजीकरण और व्यवसायीकरण के विरुद्ध संघर्ष, पिछले दशक से शुरू हुए फुटकर बिक्री के धन्धे में बड़ी कम्पनियों की घुसपैठ के खिलाफ ठेला-गुमटी वालों के संघर्ष, ये सभी अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों द्वारा बाजार से मुकाबला करने और थोड़ा-बहुत ही क्यों न हो, उसे अपनी ओर मोड़ने के प्रयास रहे हैं। जैसाकि स्पष्ट है किसान, कारीगर, आदिवासी, ठेला-गुमटी पर धन्धा करने वाले और मजदूर सभी ने ये संघर्ष किये हैं। टुकड़ों-टुकड़ों में कभी-कभी सफलता भी हाथ लगी है, लेकिन थोड़े समय बाद ही बाजार वापस वैसा ही हो जाता है।

ये संघर्ष शायद तभी सफल हो सकते हैं जब संघर्ष करने वाले सभी समुदाय आपस में एकता स्थापित करें और यह एकता तभी स्थापित हो सकती है जब हम सबमें आपसी समानता क्या है यह हम समझें। हम किसान, कारीगर, आदिवासी, ठेला-गुमटी वाले और मजदूर हैं, हम सबके बीच कौन-सी समान बात है?

हमारी एकता का आधार–लोकविद्या

हम सब गरीब हैं और लोकविद्या के बल पर अपना काम करते हैं। हमारा ज्ञान और कौशल, स्कूल और कालेज में नहीं पढ़ाया जाता। इसे विकसित करने पर सरकारें कोई खर्च नहीं करतीं। हम इसे अपने समाज, अपने पूर्वजों, सहकर्मियों के साथ, निरंतर अभ्यास, प्रयोग, अपनी तर्कबुद्धि और संवर्धन, आदि से हासिल करते हैं और कारगर बनाते हैं। इसलिए इसे लोकविद्या कहा जाता है। लोकविद्या में ही हमारी आपसी समानता के सूत्र हैं। लोकविद्या ही हमारी सबसे बड़ी ताकत है और यही हमारे बीच एकता की कड़ी है। यह हमें एक बृहत् समाज का रूप देती है, जिसे लोकविद्याधर समाज कहा जा सकता है।

हमारा दावा

समझने की बात यह है कि बाजार में उत्पीड़न और शोषण का शिकार लोकविद्याधर समाज है। हम अपनी लोकविद्या की ताकत का इस्तेमाल बाजार से मुकाबले में कैसे करें, यही सबसे बड़ा सवाल है। इस सवाल का जवाब हमारे ही आन्दोलनों से मिलना है, एक ऐसे आन्दोलन से मिलना है जिसमें लोकविद्याधर समाज अपनी विद्या की श्रेष्ठता का दावा पेश करता है। खुलेआम यह कहता है कि कालेज और विश्वविद्यालय का ज्ञान मुनाफे से जुड़ा हुआ ज्ञान है, यह ज्ञान लम्बे-चौड़े खर्च की व्यवस्थाओं से पैदा होता है और इसे प्राप्त करने के पीछे बड़ी कमाई, खूब पैसे वाली नौकरी या व्यवसाय की चाहत काम करती है। इसी ज्ञान ने प्रकृति का नाश किया है, पर्यावरण दूषित किया है, समाज में फूट डाली है और मनुष्य के शोषण को व्यापक आधार दिया है। जबकि लोकविद्या जीवनयापन की विद्या है। आपस में भाईचारे और प्रकृति की गोद में हँसते-खेलते रहने की विद्या है। यह किसी चहारदीवारी में बँधी नहीं होती, समाज में बसती है और वहीं फलती-फूलती है। इसका आधार द्वेष, प्रतिस्पर्धा या मुनाफे में नहीं होता। यह मनुष्य की वैज्ञानिक सोच और कलात्मक अभिव्यक्ति का रूप होती है। लोकविद्या दर्शन समाज में प्रचलित सभी किस्म के ज्ञान और हुनर को बराबर का स्थान देता है और सामाजिक गैर-बराबरी खत्म करने का आधार बनाता है।

लोकविद्या आन्दोलन और बाजार मोड़ने की चुनौती

लोकविद्या में ही मनुष्य का भविष्य है, इस दावे के साथ एक लोकविद्या जन आन्दोलन खड़ा होना चाहिए। इसी जन आन्दोलन के अन्तर्गत हम यह दावा पेश करेंगे कि लोकविद्या के जरिये किये गये उत्पादन को न्यायसंगत मूल्य मिलना ही चाहिए और वे रास्ते भी खोज सकेंगे जो बाजार को वास्तव में हमारी ओर मोड़ने का काम करेंगे। यही एकमात्र रास्ता है जिससे सबकी खाना, कपड़ा और मकान की जरूरतें पूरी हो सकेंगी, प्रकृति का विनाश थमेगा और सामाजिक गैर-बराबरी खत्म की जा सकेगी।

बाजार मोड़ने का काम जीवन पद्धति बदलने का काम है। रहन-सहन के तरीके, मनोरंजन के रूप, एक-दूसरे को देखने की नजर सब कुछ बदल जायेगा। लोकविद्याधर समाज का यह आन्दोलन एक ज्ञान आन्दोलन है। इसमें लोकविद्याधर समाज के सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, विशेषज्ञों, कलाकारों, साहित्यकारों, जन संचारकर्मियों व सम्पर्ककर्त्ताओं को आगे बढ़कर काम करना है। यह जरूरी है कि वे लोकविद्या की श्रेष्ठता पर अपनी समझ पक्की करें और इस बदलाव में बाजार का रुख मोड़ने की केन्द्रीय भूमिका पहचानें।

•

राम अधार गिरि नहीं रहे

25 मार्च, 2011 की शाम राम अधार गिरि का निधन हो गया। वे 87 वर्ष के थे। लगभग एक साल से बढ़ती फेफड़ों की बीमारी ने अन्तिम एक महीने कष्ट दिया, अस्पताल दौड़ाया। अन्तिम एक हफ्ता वे वाराणसी से लगभग 35 किलोमीटर दूर जी॰ टी॰ रोड पर स्थित अपने गाँव जगदीश सराय (जिला-चन्दौली) में ही रहे। वहीं उनका निधन हुआ।

हमें इस अद्भुत व्यक्तित्व के साथ काम करने का और प्रेरणा ग्रहण करने का मौका 1985 के बाद से मिला। सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन इस क्षेत्र में बहुत तेज था। उनके इस आन्दोलन में भाग लेने की कहानियाँ हमने और लोगों से सुनी। वे अपने बारे में कम बातें किया करते थे। लोहिया के इस चेले ने अपने गुरु के अनुरूप ही हमेशा समाजवादियों की पार्टीबन्दी से ऊपर उठकर समाजहित में कदम आगे बढ़ाया।

लोकविद्या पंचायत के बहुत से पाठक इनसे मिले हैं। धोती-कुर्त्ता और गमछा धारण किये हुए एक साधारण किसान दिखनेवाला यह व्यक्तित्व अन्त तक पैदल और टेम्पो से चलता रहा, सभी सामाजिक कार्यक्रमों में समय से उपस्थित होता रहा और अपनी लेखनी को विश्राम देने का नाम कभी नहीं लिया। सालों सोशलिस्ट पार्टी के जिलाध्यक्ष रहने और बाद में सर्वाधिक पिछड़ा वर्ग संगठन के अध्यक्ष रहने के बाद भी किसी आय के पद पर न रहकर अन्त तक गरीबी में रहने वाले गिरि जी कभी कोई शिकायत नहीं करते थे। हमारे समाजवादी मित्रों ने न जाने कितने बार हमें बताया कि इनके साथ राजनैतिक गुटबन्दी में हमेशा ही अन्याय हुआ। लखनऊ से बलिया तक के चप्पे-चप्पे के जानकार, सभी कार्यकर्त्ताओं की क्षमताओं और कमजोरियों से वाकिफ और हरेक को उसके कार्य का श्रेय देने वाले गिरिजी किसी भी

सवाल पर नैतिक दृष्टि से क्या सही है इस पर बहस को सबसे पहले केन्द्रित करते थे।

लगातार जनता के बीच घूमने वाले तथा अहं और मोह से मुक्त इस व्यक्तित्व में लिखने की अद्भुत क्षमता थी। हम लोगों ने पिछले 15 वर्षों में इनका विविध लेखन प्रकाशित किया है। अगर एक शब्द भी बदलने का हम सुझाव देते थे तो इनके पास पूरा तर्क होता था कि उन्होंने जो शब्द इस्तेमाल किया है वह क्या सोचकर किया है और उसे बदलने पर किसतरह बात बदल जायेगी। इतना सटीक लेखन और ऐसे शब्दों में जो सबके समझ में आये,उनकी इस क्षमता को उनकी समकालीन दुनिया ने पूरी तरह से समझा ऐसा लगता नहीं है।

एक बात कहने से मन नहीं मान रहा। अन्तिम दिनों में एक बार जब हम उनसे मिलने जगदीश सराय गये, फरवरी का महीना था, रजाई ओढ़े लेटे हुए थे। थोड़ी देर में एक कागज निकालकर दिये। बोले 'आज' अखबार को दे दीजियेगा छापने के लिए। हमने पूछा ये कब लिखा? तो बोले, कल रात को दो बजे नींद खुल गई और फिर नींद आ नहीं रही थी, तो मैंने ये लिख दिया। मैने सोचा क्या गजब की बात है! वैचारिक जिन्दगी का विलक्षण नमूना! 87 साल की उम्र में बीमारी की अवस्था में सर्दी की रात में 2 बजे नींद नहीं आ रही इसलिए ढिबरी जलाकर सामाजिक विचारों को संजोना और लिखना यह कुछ अद्भुत बात है। अच्छे-अच्छे दार्शनिक फेल हो जायेंगे और यह इन्सान कालेज पढ़ने नहीं गया था।

लोकविद्या विचार के बनाने, उसे लोगों तक ले जाने और विद्या आश्रम बनाने व उसे दिशा देने में गिरि जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। वे जब तक थे शारीरिक या मानसिक दृष्टि से कोई अपने को थका हुआ नहीं महसूस कर सकता था। विद्या आश्रम ने अक्टूबर, 2010 में वाराणसी शहर के केन्द्रीय सभागार पराड़कर भवन में उनका सम्मान आयोजित किया। सभागार में बैठने की जगह नहीं बची। इस अवसर पर 'राम अधार गिरिः लोकहित के प्रहरी' नाम से हमने एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उनके चुनिन्दा लेख हैं और उन तमाम लोगों ने उनके बारे में दो शब्द लिखे हैं, जिन्होंने उनके साथ अलग-अलग समय पर काम किया। विद्या आश्रम पर उनका बराबर आना-जाना रहा। यहाँ से जुड़े सभी लोग उन्हें जानते थे। उनके निधन के 4 दिन बाद 29 मार्च को विद्या आश्रम पर उनकी स्मृति में एक राम अधार गिरि गौरव सभा की गई। मुगलसराय, चन्दौली और पराड़कर भवन में भी ऐसी सभायें हुईं। मृत्यु के महीने भर पहले उन्होंने इस क्षेत्र में समाजवादी आन्दोलन पर एक लम्बा लेख हमें दिया था। इसे हम प्रकाशित करेंगे। चन्दौली में राम अधार गिरि के नाम से ग्रामीण नौजवानों के लिये एक प्रेरणा और सामाजिक संघर्ष का स्थान बनाने का प्रस्ताव है। सामाजिक सरोकार और परिवर्तन का यह समाजवादी योद्धा हमारी प्रेरणा का स्रोत हमेशा ही बना रहेगा।

•

जैतापुर नाभिकीय बिजली परियोजना

के.के. सुरेन्द्रन

भारत सरकार की नीति के अनुसार 2032 तक नाभिकीय बिजली का उत्पादन अभी से चौदह गुना बढ़ा दिया जायेगा। अभी यह 4560 मेगावाट है, जो भारत में पैदा की जा रही कुल बिजली का 3 फीसदी है। इसे 2032 तक 63000 मेगावाट तक ले जाने की योजना है। जैतापुर का नाभिकीय बिजलीघर पूरा होने पर 10000 मेगावाट बिजली देगा जो 1650 मेगावाट ताकत के छः रिएक्टरों से मिलकर बनेगी। दुनिया में इतना बड़ा नाभिकीय बिजलीघर अभी और कहीं नहीं है। 2008 में भारत और अमेरिका के बीच जो समझौता हुआ उसके चलते 1974 में इस क्षेत्र में भारत पर लगी पाबंदियाँ उठ गई और तमाम देशों के लिये भारत का नाभिकीय ऊर्जा का बाजार खुल गया। इसके चलते नाभिकीय क्षमता वाले देशों के साथ भारत सरकार ने कई नये समझौते भी किये।

जैतापुर में लगाये जा रहे इस बिजलीघर का विरोध जापान की घटनाओं को लेकर बहुत बढ़ गया है। 11 मार्च को भूकम्प और सुनामी के चलते जापान के समुद्र के निकट स्थित फुकुशिमा नाभिकीय कारखाने में कई विस्फोट हुए और अभी तक इन विस्फोटों के चलते फैले विकिरण से उस क्षेत्र के लोगों की जिन्दगी बरबाद होने पर दुनिया भर में चर्चा चल रही है। इसके चलते जैतापुर बिजलीघर का स्थानीय विरोध और पर्यावरणीय समूहों का विरोध बहुत बढ़ गया।

विकीपीडिया के अनुसार जैतापुर परियोजना 15-17 वर्षों में पूरी होगी और इसकी लागत लगभग एक लाख करोड़ रुपये होगी। भारतीय नाभिकीय ऊर्जा निगम भारत के सारे नाभिकीय उर्जा के उत्पादन संस्थानों का कर्ता-धर्ता है। इसके चेयरमैन एस0के0 जैन का कहना है कि जैतापुर नाभिकीय बिजलीघर में बनने वाली बिजली 4 रुपये प्रति यूनिट की दर से मिलेगी तथा यह कि यह इस इलाके में और तरीकों से पैदा की जा रही बिजली से सस्ती है। सारे विरोधों के बावजूद भारत और फ्रांस के बीच दिसम्बर 2010 में जैतापुर में यह बिजलीघर बनाने के समझौते पर दस्तखत हो गये। यह रिएक्टर नया है। अभी तक दुनिया में और कहीं नहीं लगा है। अमेरिका के विशेषज्ञों ने इस रिएक्टर की सुरक्षा व्यवस्थाओं पर संदेह जाहिर किया है। किन्तु फिनलैण्ड में एक ऐसा रिएक्टर लगाया जाना है तथा चीन ने 3 ऐसे रिएक्टरों के लिये समझौता किया है।

स्थानीय विरोध

जैतापुर महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले का एक कस्बा है। यह रत्नागिरी शहर से प्रांतीय राजमार्ग नं0 4 पर 55 किलोमीटर की दूरी पर है। यह शुक और कजवी नदियों के मुहाने पर है। सरकार ने जैतापुर नाभिकीय बिजली परियोजना के लिये 2400 एकड़ (968 हेक्टेयर या 9.68 वर्ग किलोमीटर) जमीन अधिग्रहित की है। दो नदियों के मुहने के बीच के 5 गाँवों की सारी जमीन इसमें आ गई है। पश्चिमी घाट के शिवाजी काल के विजय दुर्ग और यशवंत गढ़ किले भी प्रतिबंधित इलाके में आ जाते हैं। जैतापुर पहले एक महत्वपूर्ण बंदरगाह रह चुका है। सह्याद्रि की पहाड़ियों और अरब सागर के बीच का प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर ऐतिहासिक महत्व का यह क्षेत्र सबकी पहुँच के बाहर हो जायेगा और समयांतर में भुला दिया जायेगा।

पर्यावरणीय प्रभाव अनुमान समिति ने रिपोर्ट लगाई कि यह क्षेत्र बंजर है जबकि उस जमीन पर गाँव वाले सब्जी और आम भी पैदा करते रहे हैं। स्थानीय किसान और सामाजिक कार्यकर्ता यह सोचते हैं कि इस परियोजना से क्षेत्रीय वनस्पति और प्राणी जगत का नाश हो जायेगा और अरब सागर का वह इलाका प्रदूषित हो जायेगा। मछुआरे भी डर गये हैं कि परियोजना से वहाँ की समुद्री स्थितिकीय पूरी तरह गड़बड़ हो जायेगी और उनकी जीवन रेखा टूट जायेगी। महाराष्ट्र के राजनैतिक नेताओं ने क्षेत्रीय लोगों के साथ बैठकें कीं। मुख्यमंत्री भी लोगों को समझाने आये। लेकिन लोगों को उनकी बातों पर विश्वास नहीं है।

जबकि मुम्बई और दिल्ली में वित्तीय तथा ऊर्जा से सम्बन्धित सवालों पर बहस होती है, जैतापुर के लोग समझते हैं कि उनकी जिन्दगी के साथ खिलवाड़ किया जा रहा है। यह बिजलीघर कोंकण में है, जो स्थितिकीय दृष्टि से संवेदनशील पश्चिमी घाट के एकदम नजदीक है। मुम्बई के प्रसिद्ध टाटा समाज विज्ञान संस्थान ने परियोजना के प्रभावों पर काम किया है। कोंकण नाभिकीय परियोजना विरोधी समिति के अनुसार स्थानीय विरोध इतना जबर्दस्त है कि एक भी गाँव वाले ने अधिग्रहित की जाने वाली जमीन का आर्थिक मुआवजा नहीं लिया है। कोंकण बचाओ समिति और कोंकण नाभिकीय परियोजना विरोधी समिति नाभिकीय बिजलीघर की परियोजना वापस कराने का आन्दोलन चला रहे हैं। जनहित सेवा समिति, इण्डियन स्कूल आफ सोशल साइंसेज, लोक विज्ञान संघटना, युसुफ मैहरअली सेन्टर और मार्क्सवादी पार्टी के मजदूर संगठन भी विरोध में खड़े हैं। जैतापुर के स्थानीय निवासी इस परियोजना के सख्त विरोध में है। जापान के फुकुशिमा नाभिकीय परियोजना में विस्फोट के बाद भी केन्द्र सरकार ने पर्यावरणीय अनुमति दे दी है और राजनैतिक हलकों से यह आवाज आ रही है कि सरकार इस नाभिकीय परियोजना को बनाकर ही रहेगी। इस सबके चलते स्थानीय जनता आन्दोलित है। 18 अप्रैल को महिलाओं और बच्चों के साथ प्रदर्शन कर रहे लोगों पर पुलिस प्रशासन ने गोली चला ही दी और एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई।

सरकार का दृष्टिकोण

मुम्बई स्थित टाटा समाज विज्ञान संस्थान ने जैतापुर में प्रस्तावित इस नाभिकीय बिजलीघर की कड़े शब्दों में आलोचना की है। उनका संकेत यह है कि सरकार ने तथ्यों को उलट-पलट कर उर्वर भूमि को बंजर घोषित कर दिया है। उनकी रिपोर्ट यह भी कहती है कि जैतापुर का क्षेत्र भूकम्प की दृष्टि से संवेदनशील है। सरकार का झूठ इण्डियन एक्सप्रेस में छपे महाराष्ट्र के उद्योग मंत्री राणे के बयान में साफ दिखाई देता हैं। ''परियोजना सुरक्षित है। विरोध कर रहे लोग गुमराह हैं। परियोजना एक भी घर या कृषि योग्य भूमि से विस्थापन नहीं करती। केवल 150 आम के पेड़। और फिर हमने एक बढ़िया मुआवजा तय किया है। हमारे राजस्व विभाग के अनुसार यहाँ प्रति एकड़ मुआवजा रुपया 46,000/- आता है, किन्तु हम रुपया 10 लाख प्रति एकड़ देने जा रहे हैं। इसके अलावा 25 करोड़ रुपये बैंक में जमा किये जायेंगे जिसका ब्याज परियोजना से प्रभावित परिवारों में बाँटा जायेगा। इसके अतिरिक्त लाभ का 2 प्रतिशत स्थानीय विकास के लिये इस्तेमाल किया जायेगा।'' इसी तरह आगे बढ़ चढ़कर मुख्यमंत्री पृथ्वीराज चौहान ने भी बातें कही। उन्होंने सांगली में मध्य अप्रैल में यह घोषणा की कि यह बिजलीघर किसी भी कीमत पर लगाया जायेगा। उन्होंने कहा ''जिन लोगों की जमीने अधिग्रहित की जा रही है उन्हें भारत नाभिकीय ऊर्जा निगम अधिकतम संभव मुआवजा देगा। इसके अलावा जो गलतफहमियाँ लोगों में है उन्हें हम वार्ता से दूर करेंगे। इसके लिये परमाणु ऊर्जा विशेषज्ञों और संचार माध्यमों का सहारा लिया जायेगा।

विशेषज्ञों की राय और सुरक्षा का सवाल

यह वही नाभिकीय ऊर्जा है जिसके लिये आजादी के समय से ही प्रयोगों और अनुसंधान से लेकर रिएक्टर बनाने पर बेशुमार पैसा खर्च किया गया है। फ्रांस से इस रिएक्टर को लाकर भारत में लगाने से कई परमाणु वैज्ञानिक अपनी असहमति व्यक्त करते रहे हैं। उनका कहना है कि जैतापुर और निकटवर्ती इलाकों के लोगों पर एक ऐसी प्रौद्योगिकी थोपी जा रही है जिसका प्रयोग पहली बार हो रहा है। इन इलाकों के लोगों को इसके नतीजे भुगतने पड़ सकते हैं।

एक खास बात यह है कि इस रिएक्टर को बनाने वाली कम्पनी अरेवा उस अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्य नहीं है जो रूस में हुई चर्नोबिल दुर्घटना के बाद सुरक्षा की दृष्टि से बनाया गया।

अंत में

आशा है कि जैतापुर नाभिकीय बिजली परियोजना का विरोध मजबूती की ओर बढ़ेगा और सरकारों को झूठ बोलने और अपने लोगों को धोखा देने की दुनिया से निकालकर जमीन पर लाकर खड़ा करेगा। यह विरोध अति महत्वपूर्ण है और राजनीति या किन्हीं दृष्टियों के चलते फूट या विभाजन बेहद दुर्भाग्यपूर्ण होगा। जब हम सब ये समझते हैं कि नाभिकीय ऊर्जा मनुष्य और प्रकृति के विनाश की ऊर्जा है, पर्यावरण मंत्रालय को केवल वनस्पति और प्राणि जगत की बात से आगे बढ़कर नाभिकीय ऊर्जा के विशेष और व्यापक विनाशकारी प्रभावों को अपने मूल्यांकन की कसौटियों में शामिल करना चाहिये।

•

सेज़ की कहानी किसान की जुबानी

जयप्रकाश

28 जून, 2002 की चिलचिलाती धूप में उ.प्र. की उद्योग सचिव सुश्री रीता मेनन छः-सात गाड़ियों के काफिले के साथ कंधिया फाटक से कछुआ बोझ मार्ग पर जाते हुए गाँव कि किसानों से पूछती हैं कि इस क्षेत्र में पैदावार कैसी होती है? किसानों ने उत्तर दिया कि बिजली आदि के अभाव में खेती की पैदावार अच्छी नहीं होती फिर भी हमें खाने-पीने की कमी नहीं होती।

दूसरे दिन स्थानीय अखबारों में खबर छपती है कि कंधिया और आसपास के पाँच गाँवों की 210 हेक्टेयर जमीनों का अधिग्रहण होगा और उसपर SEZ का निर्माण किया जायेगा। इस बात की सहमति जिलाधिकारी, भदोही, जिलाधिकारी, वाराणसी व अन्य प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा दी गयी है।

इन खबरों को पढ़कर उक्त पाँचों गाँव धनापुर, कंधिया, गोंडामीर, इमाम अली, कछुआबोझ व जोलहापुर में खेती करनेवाले किसानों व खेतिहर मजदूरों को घोर चिन्ता हुई और उन्होंने आपस में विचार कर दिनांक 25 जुलाई, 2002 को भदोही के जिलाधिकारी, दिनांक 1.08.2002 विन्ध्य मण्डल के आयुक्त से किसानों ने मिलकर इस आर्थिक जोन को अपनी उपजाऊ जमीन पर न स्थापित करने का अनुरोध किया। इस सम्बन्ध में विधान परिषद सदस्य श्री राम सुमेर यादव, स्थानीय विधायक श्री उदयभान सिंह, क्षेत्रीय सांसद श्री रामरति बिन्द द्वारा भी प्रमुख सचिव उद्योग को पत्र लिखा गया और कहा गया कि उक्त जमीन छोटे-छोटे किसानों की है। साथ ही अत्यधिक उपजाऊ है। इसी पर किसानों की जीविका निर्भर है। अतः इस कृषि भूमि का अधिग्रहण न किया जाय।

अत्यन्त गोपनीय तरीके से किसानों की उक्त भूमि का अधिग्रहण शुरू कर दिया गया और किसी भी अधिकारी द्वारा किसानों को कोई भी जानकारी नहीं दी गयी, प्रमुख सचिव, उद्योग श्री शशांक शेखर सिंह द्वारा बताया गया कि 210 हेक्टेयर जमीन का अधिग्रहण 'सेज' के लिए किया जायेगा। 22 जून, 2002 ई. को अधिग्रहण की अधिसूचना प्रकाशित कर दी गयी। इस क्षेत्र के किसान तभी से इसके खिलाफ आन्दोलनरत हैं। श्री राजेश कुमार राय, श्री रामचन्द्र पटेल, श्री मिश्री लाल पासी, श्री अवध नारायण पटेल, श्री छन्नूलाल पटेल व श्री जयप्रकाश सिंह ने क्षेत्र के किसानों को इस खतरे के प्रति जागरूक किया और ये लोग भा.क.पा. के नेता श्री इन्द्रदेव पाल व मजदूर नेता रऊफ अन्सारी से मिलकर इस आन्दोलन में मदद करने के लिए प्रार्थना किया। आन्दोलन को जारी रखने के लिए किसानों ने 'खेत बचाओ संघर्ष समिति' का गठन किया जिसके अध्यक्ष सीटू के प्रदेश अध्यक्ष कमलापति त्रिपाठी को बनाया गया, जिनके नेतृत्व में हजारों की संख्या में क्षेत्र के किसानों, मजदूरों, महिलाओं ने जिला अधिकारी, भदोही, आयुक्त विन्ध्य, वाराणसी व विधान भवन के सामने दिनांक 12 नवम्बर, 2002 को धरना दिया तथा वाराणसी-जंघई रेलखण्ड पर चक्का जाम किया तथा वाराणसी-भदोही राजमार्ग पर दिन-भर धरना दिया। इसके बावजूद प्रदेश सरकार अधिग्रहण की कार्यवाही गुप-चुप तरीके से करती रही तथा किसानों की आवाज को दबाती रही।

सरकार उक्त जमीन के अधिग्रहण के लिए 1899 के कानून का पालन कर रही है जो कि अंग्रेजों द्वारा बनाया गया है और इसके तहत किसानों को अपनी बात कहने का अधिकार भी नहीं है। जबकि देश को आजाद हुए 60 वर्ष से अधिक समय बीत गया किन्तु केन्द्र और प्रदेश की सरकारें अंग्रेजों द्वारा बनाये गये इस जन-विरोधी काले कानून का इस्तेमाल कर रही हैं, जो कि भारत के लिए कलंक है।

उक्त जमीन के छिन जाने से उक्त पाँच गावों के अलावा रसुलहाँ, मड़ैया, हित्तापुर, महराजपुर, लखनसेनपुर, बरदहाँ, लक्षापुर, आदि गाँवों के लगभग 1750 किसान परिवार व हजारों खेतिहर मजदूर जीविकाविहीन हो जायेंगे और प्रतिवर्ष 10 हजार कुन्तल गेहूँ तथा लगभग 15 हजार कुन्तल चावल का उत्पादन खत्म हो जायेगा। साथ ही गन्ना, दलहन व सब्जियों की हजारों बीघा खेती भी समाप्त हो जायेगी जिसके फलस्वरूप पूरे क्षेत्र में भुखमरी व अराजकता फैल जायेगी।

किसानों के विरोध को दरकिनार करते हुए प्रशासनिक अधिकारियों ने धारा-4/17 व 6/17 का प्रकाशर कर धारा-9 का भी प्रकाशन कर दिया तथा किसानों को यू.पी.एस.आई.डी.सी. के अधिकारियों ने धमकाना शुरू कर दिया, जिससे डरकर कुछ किसानों ने सन् 2005 में अनुबन्ध पत्र पर हस्ताक्षर किया तथा प्रतिकर प्राप्त किया। अधिकारियों ने विभिन्न प्रकार के हथकण्डे अपनाकर किसानों को डराया-धमकाया और कहा कि यदि तुम लोग मुआवजा नहीं लोगे तो सरकार जबर्दस्ती तुम्हारी जमीन छीन लेगी। उनके इस कार्य में स्थानीय अधिकारियों ने भी पूरी मदद किया तथा किसानों को हतोत्साहित किया जिसका एक उदाहरण दिनांक 1.06.2007 को भदोही के उपजलिाधिकारी श्री अनिल कुमार ने किसानों के प्रतिनिधियों को वार्त्ता के लिए बुलाकर क्षेत्राधिकारी औराई व एस. ओ. भदोही की उपस्थिति में दबाव बनाकर किसानों से सेज का विरोध न करने के सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर करा लिया। जब किसानों ने जुलूस बनाकर उक्त कार्यवाही का विरोध किया तब उपजिलाधिकारी महोदय ने सहमति-पत्र को शासन के पास भेज दिये जाने की बात बतायी।

किसानों को दिया जाने वाला मुआवजा लगभग तीन लाख रुपया प्रति एकड़ तय किया गया है। इसके अलावा उनके पुनर्वास व रोजी-रोटी की कोई गारण्टी नहीं दी गयी है। किसानों ने जब इस बारे में उनसे पूछताछ किया तो वे सीधे मुकर गये।

किसानों ने दिनांक 17.06.2007 से 31.10.2010 तक कँधिया फाटक के पास क्रमिक धरना देकर भूमि अधिग्रहण का विरोध किया। इस दौरान आ.बी. के डिप्टी एस.पी. व स्थानीय एल.आई.यू. के लोगों ने किसानों से वार्त्ता कर उनकी बात को केन्द्र सरकार तक पहुँचाने की बात कही किन्तु प्रदेश व केन्द्र सरकारों ने किसानों के विरोध पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस अधिग्रहण में प्रदेश सरकार के अनेक भ्रष्ट अधिकारी व प्रशासनिक अधिकारी लिप्त हैं, जो किसानों से सस्ते दर पर जमीन लेकर उसे उद्योगपतियों को बेचना चाहते हैं और उससे भारी कमीशन लेना चाहते हैं।

किसानों ने यह तय किया है कि जिस प्रकार हमारी पूर्व-पीढ़ी ने हमें जीविका के साधन के रूप में उक्त जमीन हमें दिया है उसी प्रकार हमलोग एकजुट होकर अपनी जमीन की रक्षा करेंगे और यदि जरूरत पड़ी तो इसकी रक्षा के लिए हम सपरिवार कुर्बानी भी देने में पीछे नहीं हटेंगे। किसानों की इसी तेवर को देखते हुए प्रदेश की सरकार ने उक्त जमीन से अभिलेखों में किसानों का नाम काट दिये जाने पर भी कुछ भी निर्माण नहीं करा सकी है और आगे भी किसान अपने जान की कुर्बानी देकर भी जमीन की रक्षा करते रहेंगे, इसके लिए किसानों द्वारा माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में दो रिट पेटीशन सं. 60072/2005 दाखिल किया है जिसपर माननीय उच्च न्यायालय ने सम्बन्धित अधिकारियों से जवाब दाखिल करने को कहा है। आज तक सभी पक्षों ने अपना जवाब दाखिल नहीं किया है तथा किसानों को धमकाकर उन्हें 'सेज' का विरोध न करने के लिए बाध्य कर रहे हैं।

चौरी, संत रविदास नगर, भदोही
मो. 9506445377

किसान को उसके आर्थिक हक़ दीजिये

विजय जावंधिया

सरकार को कृषि और किसान के प्रति अपने दृष्टिकोण में सुधार लाना जरूरी है। उद्योगों, व्यावसायिक वर्गों तथा सरकारी कर्मचारियों पर सरकार की दयादृष्टि हमेशा ही बनी रहती है। उद्योगों को छूट, ऊँची तनख्वाह वालों के आयकर में कटौती और सरकारी कर्मचारियों के वेतन में बढ़ोत्तरी की नीतियाँ लगातार अपनायी गयी हैं। लेकिन खेती और ग्रामीण मजदूरी के जरिये होने वाली आय गिरती ही चली गयी है। एकतरफ रु. 100/- प्रतिदिन के हिसाब से एक ग्रामीण परिवार को 100 दिन के काम की गारण्टी मनरेगा में दी गयी है, यानि रु. 10,000/- सालाना की आय की गारण्टी। वहीं गाँव के प्राथमिक विद्यालय का शिक्षक रुपये 20,000/- प्रतिमाह का वेतन पाता है। यानी सरकारी नीति ही गाँवों में जबर्दस्त आर्थिक गैर-बराबरी को मान्यता देती है। शहर और गाँव के बीच की गैर-बराबरी उसके ऊपर है।

नीचे कुछ एकदम सरल सुझाव दिये गये हैं, जिससे गाँव और खेती में सुधार की ओर सक्षम कदम उठाये जा सकते हैं:—

1. पिछली पंचवर्षीय योजनाओं में सकल राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि का हिस्सा केवल 13 फीसदी रहा है। कृषि के लिए बजट का हिस्सा बढ़ाकर 40 फीसदी कर देना चाहिए। यह धनराशि फसल के समर्थन मूल्य को बढ़ाने में इस्तेमाल की जाये, ऐसी सिफारिश किसान आयोग के अध्यक्ष डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने भी की है।
2. गाँव स्तर पर एक अच्छी फसल बीमा योजना की रूपरेखा बनायी जानी चाहिये। इसमें हर किश्त का 80 फीसदी राज्य और केन्द्र सरकारों ने बराबर-बराबर मिलकर देना चाहिये, शेष 20 फीसदी किसान दे।
3. कृषि फसल कर्ज 4 प्रतिशत ब्याज की दर से दिया जाये। वर्षा आधारित कृषि के किसानों को दिये गये कर्ज पर ब्याज नहीं लगना चाहिये।
4. रसायन मुक्त खेती, पशुपालन, चारा और ज्वार, बाजरा जैसे अनाज की खेती को आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये।
5. गाँव में गुणवत्तापूर्ण निःशुल्क शिक्षा व चिकित्सा सेवायें मिलने को वरीयता दी जाये।
6. रुपये 10 लाख प्रतिवर्ष से अधिक की कृषि आय और बिक्री पर कर लगाना शुरू किया जाय। इस कर का इस्तेमाल गरीब वर्गों की मदद के लिये किया जाय।

•

मैहर के किसानों का संघर्ष

कृष्ण कुमार क्रान्ति

भारतीय किसान यूनियन ने 18.02.2011 को मैहर, म.प्र. में एक महापंचायत की। उस पंचायत में लगभग पच्चास हजार किसान आये हुए थे। किसानों के जमीन के मुद्दे पर पिछले वर्ष से संघर्ष चल रहा था। नौ किसानों का बगैर मुआवजा दिये जे.के.एस. सीमेन्ट कम्पनी ने जमीन कब्जा कर लिया। पिछली बार पंचायत 18 सितम्बर, 2010 को हुई थी। उस पंचायत में रास्ता साफ नहीं दिखा। तब सभी किसानों ने जंग का ऐलान किया। जब किसानों ने अपनी ताकत दिखायी तो प्रशासन को झुकना पड़ा। मुआवजा रुपये तीन लाख से बढ़कर सोलह लाख देना और परिवार के एक सदस्य को नौकरी देना तय हुआ।

किसानो की माँग इस प्रकार थी:—

1. प्रदेश में पाले से हुए नुकसान का कर्ज से दबे किसानों द्वारा आत्महत्या किये जाने पर प्रति व्यक्ति 10 लाख रुपये राहत मुआवजा दिया जाय।
2. पाले से प्रभावित किसानों की फसल रबी (दलहन) रुपये 10 हजार प्रति एकड़ एवं सब्जियों के नुकसान पर रुपये 25 हजार प्रति एकड़ के हिसाब से राहत मुहैया करायी जाय।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में 16 घण्टे लगातार तीनों फेस फुल वोल्टेज बिजली सप्लाई की जाय, जले ट्रांसफार्मर तीन दिवस के अन्दर बदले जायँ। एच.बी.डी.एस. स्कीम बिना घूस दिये पूरी करायी जाय तथा बिजली सस्ते दर पर उपलब्ध करायी जाय।
4. जमीन का मुआवजा हरियाणा सरकार की तर्ज पर 35 लाख रुपये प्रति एकड़ एवं 30 हजार रुपये प्रतिवर्ष किसानों को दिया जाय व प्रत्येक वर्ष एक हजार रुपये बढ़ोत्तरी दी जाय।
5. स्थापित हो रहे, चल रहे उद्योगों, कारखानों में 75 प्रतिशत स्थानीय लोगों को रोजगार मुहैया कराया जाय।
6. बाणसागर परियोजना ब्लाक रामनगर में बाकी बचे मुआवजा का भुगतान कराया जाय व सिंचाई के पानी के लिए लिफ्ट इरिगेशन द्वारा सुविधा मुहैया करायी जाय।
7. प्रदेश में लगातार तीन वर्षों से अकाल की स्थिति बनी हुई है। बैंक की वसूली, किसानों के ट्रैक्टर व जमीन की नीलामी तत्काल बन्द करायी जाय तथा इस बीच के सभी कर्जे माफ किये जाय।
8. जाति, आय, निवास, सीमांकन, खतौनी आदि की नकल व राजस्व के सभी लम्बित प्रकरण समय-सीमा के अन्दर निपटाये जायँ।

गोला बाजार, सारनाथ, वाराणसी

सोनभद्र में आदिवासियों का धरना

बबलू कुमार

भैसहियाँ टोला, पो. पनकण, जनपद-राबर्ट्सगंज के आदिवासियों (150 घर) को बगल का गाँव नगवाँ, थाना-मांची के लोगों ने प्रशासन की मिलीभगत से 10 वर्षों से रह रहे आदिवासियों को जबर्दस्ती उनके घर, कृषि को बर्बाद कर उनको वहाँ से खदेड़ दिया। लगभग 150 आदिवासी परिवार अपने सभी सामानों को लेकर जिला मुख्यालय पर आ गये हैं। ये सभी अगरिया और गोड़ जाति के हैं। आदिवासियों का कहना है कि दबंगों व वनविभाग द्वारा आठ माह से परेशान करने, मारपीट व घर ढहाने, झोपड़ी फूँके जाने का कार्यक्रम जारी था और अन्त में इतना बेबस कर दिये कि हम सभी को अपना घर खेती छोड़कर भगना पड़ा। वन भूमि के बीच कृषि योग्य भूमि पर हम सभी वर्षों से खेती करते आ रहे हैं। हम सभी ने वनाधिकार अधिनियम के तहत दावा फार्म भी जमा किया है।

जब से हम लोगों ने दावा फार्म भरे हैं तब से वन विभाग व नगवाँ ग्राम पंचायत के लोग लगातार मारपीट करते आ रहे हैं। जुलाई, 2010 के महीने में हम सभी की झोपड़ियाँ गिरा दिये और हमारे एक दर्जन बकरियों को उठा ले गये। फिर भी हम लोगों ने अपने घरों को पुनः व्यवस्थित करके रहना शुरू किया। फिर उसके बाद दिसम्बर माह में नौ झोपड़ियाँ फूँक दी गयीं। हमारी सभी फसल पशुओं द्वारा चरा दी गयी। कई लोगों को मारपीट कर घायल भी कर दिया गया। जिलाधिकारी और एस.पी. को प्रार्थना-पत्र दिया गया लेकिन कोई कार्यवाही नहीं हुई।

तीसरी बार 19 फरवरी, 2011 को पुनः दबंगों व वन विभाग के लोगों ने मिलकर मारा और बची हुई फसल को चरा दिया। 20 फरवरी, 2011 को जिलाधिकारी को पत्रक दिया गया। पन्नूगंज के थानाध्यक्ष ने कहा कि तुम लोग यहाँ से भाग जाओ नहीं तो हम ठीक कर देंगे। थाना हमको चलाना है, एस.पी., कलेक्टर को नहीं।

वन विभाग के उत्पीड़न से लोग वहाँ से भागने को मजबूर हो गये।

प्रभावित लोगों के कुछ नाम इस प्रकार हैं— प्रभावती गोंड, बुधनी गोंड, सुगवन्ती गोंड, लक्ष्मीनियाँ गोंड, फुलबसिया गोंड, मुनिया गोंड, शिवपूजन, राममूरत, जगरनाथ, हिलवन्ती, फुलेसरी, शकुन्तला, शान्ति, रामराज गोंड, अमरनाथ अगरिया, देवनारायण गोंड, काशी अगरिया, सुनीता अगरिया।

•

हुनरमन्द बन गये मज़दूर

आरती

सराय मोहाना गाँव वाराणसी में गंगा नदी के किनारे बसा हुआ है। इसके पश्चिम में वरुणा नदी बहती हुई गंगा नदी में मिलती है। ये नदियाँ गाँव की शोभा तो बढ़ाती हैं लेकिन साथ में शहरों का गन्दा पानी लाती हैं जिससे गाँव के लोगों में तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती हैं।

यह गाँव केवल नाम का गाँव है। वास्तविकता तो यह है कि केवल आवास को छोड़कर गाँव के एक भी व्यक्ति के पास एक इंच भी भूमि नहीं है क्योंकि इनकी समस्त भूमि पर कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन नामक संस्था ने अपना कब्जा जमा रखा है और इस पर अपना कृषि फार्म चलाती है। इस गाँव में निषाद, हरिजन, राजभर एवं सोनकर जातियों के लोग रहते हैं जिसमें सोनकर को छोड़कर बाकी जातियों के लोग हथकरघा पर साड़ी बुन कर अपना जीवन-यापन करते थे। लगभग 800 परिवार इस कार्य से जुड़े थे। गाँव में जाने पर सभी घरों से करघे की गूँज सुनाई देती थी, महिलायें अपने चबूतरे पर नरी एवं कतान फेरते हुए नजर आती थीं। लेकिन आज इस गाँव से गुजरने पर न करघे की गूँज सुनाई देती है और न ही नरी व कतान फेरती महिलायें ही दिखाई देती हैं। आज ये सभी करघे सन् 2000 ई. से शुरू होने वाली भीषण मन्दी की भेंट चढ़ गये।

आजकल इस गाँव में गिनती के 10-15 करघे बचे हुए हैं जो किसी तरह घिसटते हुए चल रहे हैं जिसमें दो करघे उपासना नामक संस्था की देन हैं। ये करघे भी कब समाप्त हो जायेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता। उसके बाद तो इस गाँव में करघों का अस्तित्व तो समाप्त होगा ही साथ ही इस हुनर को जीवित रखने वाले लोग भी नहीं रहेंगे। हमारी आने वाली पीढ़ी इन हुनरमन्दों की बदहाली के चलते इसे नहीं अपना रही है और हुनरमन्द स्वयं भी अपने बच्चों को इसमें नहीं जाने देना चाहते हैं।

अब ऐसी स्थिति में लोग अपने बच्चों को इस काम से कोसों दूर रखना चाहते हैं। जो लोग विदेशों में या अन्य शहरों में नहीं जा पाये वे रिक्शा, ट्राली चलाने एवं मनरेगा में काम करने को मजबूर हो गये। कुछ परिवार इस आँधी को नहीं झेल पाये और समाप्त हो गये और कुछ की स्थिति शोचनीय एवं चिन्तनीय बनी हुई है।

मन्दी की मार से उत्पन्न बेरोजगारी के कारण हजारों लोग विदेशों में एवं अन्य शहरों जैसे मुम्बई, केरल, मद्रास आदि में चले गये। महिलायें मछली, सब्जी, फल खरीदकर बेचने का काम करने लगीं। ज्यादातर महिलायें शादी-व्याह में हलवाइयों के साथ काम करने लगीं जिसमें उनकी 24 घण्टे की मजदूरी 80-100 रुपये मिलती है और वह भी महीने-दो महीने बाद। सबसे बड़ी परेशानी इन महिलाओं को अपनी सुरक्षा को लेकर होती है क्योंकि इनके काम पर जाने का समय तो निर्धारित होता है लेकिन वापसी का समय निर्धारित नहीं होता। प्रायः ये लोग रात 12 बजे के बाद ही घर वापस आती हैं।

इस उद्योग के टूटने से गाँव एकदम जर्जर स्थिति में पहुँच गया। शिक्षा का स्तर गिरा हुआ है, नतीजतन गाँव के 2-3 प्रतिशत लोग कॉलेज तक पहुँच पाते हैं, 10-12 प्रतिशत लोग इण्टर व हाईस्कूल तक पहुँच पाते हैं। गाँव के 2-3 परिवारों के लोग सरकारी नौकरियों में भी हैं। लोग अपनी बेटियों का विवाह छोटी उम्र में ही आगरा एवं अन्य ऐसी जगहों पर कर देते हैं जहाँ कि भाषा हम नहीं समझ पाते और वे ऐसा इसलिए करते हैं कि ये लोग दहेज नहीं लेते और शादी के कुछ खर्च भी स्वयं वहन करते हैं।

•

पृष्ठ 3 का शेष

विकास और विस्थापन

आदि कामों के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा नियंत्रित उद्योगों के उत्पादों पर निर्भर कर दिया है। हरित क्रान्ति के आह्वान से पहले भारतीय किसान बीज-खाद आदि के लिए सदैव आत्मनिर्भर रहते थे। लेकिन कृषि क्षेत्र में सरकार द्वारा लादे गये आयातित विकास योजनाओं ने किसानों को हर मौसम में नये बीज और खेतीबाड़ी में उपयोगी जरूरी चीजों के लिए बाजार पर आश्रित कर दिया है। बाजार पैसे की भाषा जानता है और किसानों के पास पैसे न हों तो भी सरकार ने किसानों के लिए कर्ज की समुचित व्यवस्था कर रखी है। इस तरह से हमारी कल्याणकारी सरकारों ने आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी और सम्पन्न किसानों को कर्ज के चंगुल में फँसाते हुए 'ऋणं कृत्वा, घृतं पीबेत' की संस्कृति का वाहक बनाने का लगातार सायास व्यूह रचा है। छोटे-छोटे साहूकारों को किसानों के दुश्मन के रूप में हमेशा से देखा जाता रहा है, पर अब सरकारी साहूकारों के रूप में अवतरित बैंकों ने भी किसानों का पोर-पोर कर्ज में डुबाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है। कर्ज न चुकाने की बेबसी से आहत लाखों किसानों के आत्महत्या का सिलसिला जो शुरू हुआ, खत्म होने का नाम नहीं ले रहा है। क्यों न इस परिघटना को खेती किसानी से लोगों का जबरन करवाया जा रहा विस्थापन माना जाये?

कृषि में विकास के नाम पर हो रहे विस्थापन की साजिश का कहर यहाँ थमा नहीं है। हरित क्रान्ति के दूसरे चरण को शुरू करने को लेकर जोर-शोर से सरकारी तैयारियाँ चल रही हैं। छत्तीसगढ़ में धान की कई ऐसी किस्में उपलब्ध हैं, जिनकी गुणवत्ता और उत्पादन हाइब्रिड धान से कहीं अधिक है और कीमत बाजार में उपलब्ध हाइब्रिड धान से बहुत ही कम। फिर भी, दूसरी हरित क्रान्ति की नये मुहिम में कृषि विभाग ने निजी कम्पनियों को बीज, खाद और कीटनाशक दवाइयों का ठेका देने का मन बना लिया है। ठेका देने का आशय यह है कि उन्हीं किसानों को राज्य सरकार बीज, खाद या कीटनाशक दवाइयों के लिए सब्सिडी देगी, जो ठेकेदार कम्पनियों से ये सामान खरीदेंगे, अन्यथा किसी तरह की कोई मदद नहीं मिलेगी। गौरतलब है कि इस तरह से ये निजी कम्पनियाँ किसानों को अपने द्वारा उत्पादित बीज महंगे दामों पर बेचेंगी और एक बड़ी साजिश के तहत किसानों के पास से देशी बीज लुप्त हो जायेंगे। बाद में फिर किसानों को अगर खेतीबाड़ी जारी रखनी होगी तो मजबूरन इन कम्पनियों से बीज वगैरह खरीदने को बाध्य होना पड़ेगा। यह किसानों को खेती की स्वतंत्रता को बाधित करके उन्हें विकल्पहीन बनाने का तरीका है। कुल मिलाकर खेतीबाड़ी को एक पुण्यकर्म से बदल कर अभिशाप में तब्दील करने के लिए सरकार ने कई प्रपंच रचे हैं। जिससे कोफ्त खाकर लोग आत्मनिर्भर होने के बजाये पूँजीवादी निगमों की नौकरियों को अधिक तवज्जो देने को मजबूर हों।

विकास के तमाम उद्यमों के बावजूद, हमारा देश पिछले कुछ महीनों से कमरतोड़ महंगाई के ताण्डव को झेलता आ रहा है। दाल, चावल, खाद्य तेलों और सब्जियों जैसी जरूरी खाद्य वस्तुओं के आसमान छूती कीमतों के आगे सरकार हमेशा घुटने टेकती ही दिखी। बेहतर जीवन स्थिति बनाना भर ही सरकार का काम है। असामान्य रूप से बढ़ती कीमतों के लिए एक तरफ अपनी लाचारी दिखाते हुए सरकार दूसरी ओर, यह डींग हाँकने से परहेज भी नहीं करती कि देश ने इतना विकास कर लिया है कि भारत की गिनती अब विश्व के अग्रणी देशों में हो रही है। अगर किसी देश की अधिकतर जनता को यह नहीं पता हो कि वह जी-तोड़ मेहनत के बाद जितना कमायेगी, उसमें उसका और उसके परिवार का पेट कैसे भर पायेगा, तो इससे ज्यादा अनिश्चितता क्या हो सकती है? बढ़ती महंगाई को एक सामान्य परिघटना के रूप में प्रस्तुत करना सर्वथा अनुचित है। देश की सरकार की नैतिक जिम्मेवारी है कि देश की जनता को अपना जीवन सुचारु रूप से चलाने के लिए वह अनुकूल परिस्थिति बनाये रखे, जिसमें विकासवादी सरकारों को कोई मतलब नहीं दिखता। लोग सोचने को मजबूर हो रहे हैं कि इस देश में विकास हो रहा है, जो कि बकौल सरकार होना ही चाहिए, लेकिन यह किस तरह और किनके लिए हो रहा है?

•

लोकविद्या पंचायत के पाठकों से

इस अखबार को *लोकविद्या पंचायत* शीर्षक आवंटित हो गया है तथा घोषणा पत्र अधिप्रमाणित भी हो चुका है। इसलिए इस अंक से नियमित प्रतिमाह प्रकाशन किया जायेगा।

- **हर 50 रुपये पर 12 अंक दिये जायेंगे।**
- **अपने विचार अवश्य भेजें।**
- **अपने क्षेत्र के लोकविद्याधरों की समस्यायें, संघर्ष एवं संगठनों के बारे में अवश्य लिख भेजें।**

सम्पर्क फोन

+91-9369124998, +91-9838944822

पाँचवीं शक्ति

शंकर पुणताम्बेकर

दुनिया को चलाने, चाटने, चबाने वाली चार शक्तियाँ—नेता, पूँजीपति, धर्मगुरु और ब्यूरोक्रेट (अफसरशाह) सबको ज्ञात हैं, किन्तु इनके अलावा इस कोटि की एक शक्ति और है यह बहुत कम लोग जानते हैं। यह शक्ति है दफ्तर बाबू की।

दफ्तर बाबू छोटा हो, निरीह-सा लगने वाला प्राणी किन्तु दुनिया को चलाने, चाटने, चबाने में उसकी भूमिका किसी कदर छोटी नहीं है।

इस प्रक्रिया में इसका काम धीमा और मौन होता है, घुन की भाँति या अन्दर-ही-अन्दर कुतरकर किसी नींव या दीवार को पोला कर देने वाली चींटियों की भाँति।

नींव या दीवार कानून के अतिरिक्त मूल्यों की, आस्थाओं की, रिश्तों की।

बाबू सीधे-सीधे जनता होकर भी अपनी सीट में जनता नहीं रह जाता।

यह सरकार की डोली ढोने वाला कहार है। इसलिए जनता-तो-जनता इसकी मुट्ठी में सरकार भी होती है।

सरकार कहती है, चलो उठो काफी देर हो गई है, डोली उठाओ और कदम बढ़ाओ।

कहार की अपनी सामूहिक शक्ति है घुन या चींटियों सी सो वह कहता है, नहीं उठाता। मैं अभी मूड में नहीं हूँ। मैं अभी जंभाई ले रहा हूँ, चाय पी रहा हूँ, तम्बाकू बना रहा हूँ, गपशप कर रहा हूँ।

चलो उठो भा, तब तो उठो। तुम जंभाई ले चुके, चाय पी चुके, गप-शप कर चुके, अब तो कदम बढ़ाओ।

कहार कदम बढ़ाता है, और कुछ आगे बढ़ने के बाद यह समूह फिर रुक जाता है।

क्या हो गया भाई, क्या हो गया? तुम फिर रुक गए? सरकार कहती है।

बाहर बहुत तेज धूप है! कहार कहते हैं।

अच्छा धूप उतर गई, अब तो चलो। कुछ देर बाद सरकार कहती है।

अब तो हमारा छुट्टी का समय हो गया। कहार बताते हैं।

तेज धूप है तो बाबू रुक जाते हैं, कड़ी शीत है तो रुक जाते हैं, धुंआधार वर्षा है तो रुक जाते हैं। और धूप तेज है, शीत कड़ी है, वर्षा धुआंधार है इसका निर्णय उनके हाथ में है।

चलो भाई चलो। इस समय न धूप है, न शीत है, न वर्षा है। तुम रुक क्यों गए? डोली में बैठी सरकार अन्दर से कहती है।

कई बार तो सरकार अन्दर सोई रहती है, उसे पता ही नहीं चलता कि डोली रुकी हुई है।

खैर, सरकार को बाबू बताते हैं कि हम इसलिए रुक गए हैं कि तुम हमारा भत्ता नहीं बढ़ा रही हो।

हमने तुम्हारा भत्ता कलपरसों ही तो बढ़ाया है, भाई!

वह तो 'ब्लैक एंड ह्वाइट' भत्ता था, हमें 'कलर' भत्ता चाहिए।

ठीक है, ठीक है। तुम थोड़ा आन्दोलन करो, मोर्चा निकालो, हड़ताल पर बैठो, हम तुम्हें कलर भत्ता भी मंजूर कर देंगे।

कलर भत्ता मिल गया। अब क्यों रुके हुए हो? अब तो आगे बढ़ो।

हमें साबुन भत्ता दो। हमारे कपड़े डोली ढोते हुए मैले हो जाते हैं।

सरकार साबुन भत्ता मंजूर कर देती है।

सरकार की नाड़ी बाबुओं के हाथ में सो उन्हें हजामत भत्ता, जूता भत्ता, कमरपट्टा भत्ता, पान-सिगरेट भत्ता, कैंटिन भत्ता आदि मंजूर हो जाता है।

हमारा वेतन बढ़ाओ। बाबू कहते हैं।

देखो, मैं वेतन नहीं बढ़ाऊँगी। मुझे शिकायत मिली है कि तुम लोग रिश्वत लेते हो।

लेते हैं तो क्या बुरा करते हैं। क्या ब्यूरोक्रेट रिश्वत नहीं लेता, तुम खुद रिश्वत नहीं लेती। खबरदार आगे कभी हमारी रिश्वत की बात मुँह से निकाली तो।

ठीक है। मैं वेतन बढ़ा देती हूँ।

अब क्यों रुक गए भाई! वेतन तुम्हारा बढ़ा दिया। नाना भत्ते तुम पा रहे हो!

देखो, हममें से कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें रिश्वत पाने की कोई गुंजाइश नहीं है। यह तो अन्याय है कि सरकार लाइसेंस, कन्ट्रोल, परमिट, सर्टिफिकेट आदि के द्वारा कुछ लोगों के लिए रिश्वत के अवसर पैदा करे और कुछ लोग ऐसे किसी पारस के अभाव में रिश्वत से वंचित रह जाएँ।

सोचना होगा कि जिन्हें रिश्वत नहीं मिल पाती है उन्हें वह कैसे मिले। इसके लिए कहो तो कोई कमीशन नियुक्त कर दूँ।

नहीं, कमीशन नहीं। एक तो वह अपनी रिपोर्ट में सालों लगा देगा, दूसरे वह खुद रिश्वत खाएगा। अब जिन्हें रिश्वत नहीं मिलती है वे रिश्वत के लिए कमीशन को कैसे रिश्वत दे पाएंगे।

तो तुम्हीं लोग निकालो कोई रास्ता। सरकार कहती है।

रास्ता यही है कि जिन लोगों को रिश्वत खाने की गुंजाइश नहीं है उन्हें सिटी अलाउंस की तरह रिश्वत अलाउंस दिया जाए।

भाई, यह तो तुमने बड़ा अच्छा दिमाग चलाया। चलो मंजूर करते हैं हम रिश्वत अलाउंस।

हमने समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार किया है। बाबू कहते हैं, इस सूरत में यह अन्याय की बात थी कि हममें से कुछ को रिश्वत की गुंजाइश हो और कुछ को यह अवसर प्राप्त हो न हो। रिश्वत अलाउंस को मंजूर करके तुमने इस अन्याय को दूर कर दिया है।

अब क्या शिकायत है भाई, फिर क्यों रुक गए?

हमारे मूलभूत अधिकारों का हनन किया जा रहा है।

मूलभूत अधिकारों का हनन? किन मूलभूत अधिकारों का हनन? और कौन कर रहा है?

हनन कर रहा है डोली की छत पर बैठा हमें हांकने वाला ब्यूरोक्रेट! वह कहता है काम के समय काम करो और खाओ मत। केले मत खाओ, समय मत खाओ। यह तो गलत बात है। खाना हमारा मूलभूत अधिकार है।

देखो भाई लोगों, डोली के अन्दर से सरकार कहती है, तुम लोग रिश्वत-विश्वत तो काम के समय खा सकते हो, पर ये केले-वेले खाना अच्छी बात नहीं है।

ब्यूरोक्रेट हमारे और भी मूलभूत अधिकारों पर आघात करता है। मसलन?

मसलन, वह कहता है, काम के समय नींद मत लो। अब तुम ही देखो। नींद हमारा मूलभूत अधिकार नहीं है? क्या तुम भी काम के समय नींद में नहीं लुढ़क जाती? डोली के बाहर तुम्हारे नाम से चिल्लाते रहते हैं, पर तुम्हारे कानों जू नहीं रेंगती।

बस बस चुप करो।

हमसे ब्यूरोक्रेट कहता है काम के समय उपन्यास मत पढ़ो, क्रिकेट की कमेंटरी मत सुनो। अब ये भी क्या हमारे मूलभूत अधिकार नहीं हैं?

पढ़ना मैं समझती हूँ कि मौलिक अधिकार में नहीं आता। सो उपन्यास-कहानी पढ़ना बंद। हाँ क्रिकेट जरूर मौलिक अधिकार की बात है। तभी तो हम क्रिकेट को आकाशवाणी पर सुनाते हैं, दूरदर्शन पर दिखाते हैं। सो काम के समय तुम कमेंटरी सुन सकते हो, देख सकते हो।

अरे, अब क्या हो गया? अब क्यों रुक गए भाई।

बाबुओं ने कहा, जंभाई ले रहे हैं, भत्तो का रिश्वत का आस्वाद ले रहे हैं, क्रिकेट कमेंटरी सुन रहे हैं।

हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से साभार

●

कहानी एक गुलिस्ताँ की

सिद्धार्थ कुमार कौल

कहानी ये एक गुलिस्ताँ की
उसमें खिलते गुलों और उनके बागबाँ की
हर गुल का था अपना अस्तित्व एक
गुलों के थे महक और रंग अनेक
सदियों से ये गुल अपने अपने मौसम में खिलते
मुद्दतों के बाद अपनी मेहनत के फल उनको मिलते
सदा नहीं गुलिस्ताँ में बहार छाती
लेकिन हर गुल के खिलने की वार्षिक बारी जरूर आती
बागबाँ को गुलों से बढ़कर गुलिस्ताँ की जीनत प्यारी
कागज और इतर से बने गुलों पे नजर उसने डाली
कुछ गुलों ने बदल के अपनी सीरत अपनी पहचान मिटा डाली
और बाकी गुलों को नजरअंदाज कर चुका था माली
गुलिस्ताँ था पूरा जिनका, अब उनको दो गज जमीन भी न थी हासिल
हर ओर बस रहे थे कागज, जो कभी गुल कहलाने के थे न काबिल
गुलों को कई रौंदा भी काटा भी
उस माली ने अपनी कारीगरी के नाम पे उन गुलों की बली चढ़ा दी।
कुछ गुलों ने आवाजें उठाई, रहमत उन्होंने मांगनी चाही
बागबाँ के कानून पर लेकिन एक गूँज तक न रेंग पाई
गुलों का नसीब अब सिर्फ उनकी हथेली पे था
गुलिस्ताँ उनसे छिना हुआ, वक्त अब उसे हासिल करने का था
बागबाँ को छोड़, गुलों ने आप कदम उठाने की ठानी
दृढ़ निश्चय संकल्प और सफलता की उन्होंने रची कहानी
अपने रंगों और महकों को मिलके उन्होंने दुरुस्त किया
गुलिस्ताँ को अपने रंगों से एक बार फिर रंग दिया
बागबाँ को अपने किये पे तो लज्जा थी न आनी
ना ही उसमें आये किसी बदलाव की है ये कहानी
हमारे गुलिस्ताँ के गुलों से छीनी हुई जीने की आजादी
को फिर हासिल करने की आग भड़काने की है ये कहानी।
अब इस आग को सुलगाते नहीं, भड़काते रहना है
अपनी ज़मीन अपनी ज़िन्दगी पे अपना हक जताना है
अपने बल पे अपनी आजादी को हमें कमाना है
फिर एक बार इसको अपना गुलिस्ताँ हमें बनाना है।

●

पृष्ठ 1 का शेष

कनहर बाँध से आदिवासियों में आक्रोश

नौकरी दी गयी। शेष को न तो जमीन मिली और न अन्य सुविधा। आदिवासियों ने कहा कि उजड़ने का कोई कागज भी हमें नहीं मिला है। वर्ष 2008 तक हम लगान देते रहे हैं। हमारे खेतों की मिट्टी भी सिंचाई विभाग उठाकर ले गया लेकिन हमने फिर से जमीन समतल कर खेती शुरू की है।

आदिवासियों का कहना है कि जंगल ही हमारे जीवन का आधार है। बाँध बनने से हमारी खेती की जमीन भी डूब जायेगी। जंगल के बड़े-बड़े पेड़ भी काटे जा रहे हैं। बड़े पेड़ कटने से छोटे-छोटे पेड़ अनाथ हो जा रहे हैं। उनको पोसने वाला कोई नहीं है। हम जंगलों में पेड़ों के साथ जीते हैं।

लोकविद्या पंचायत की ओर से दिलीप कुमार 'दिली', ललित नारायण और बबलू कुमार ने इस इलाके में यात्रा करके विभिन्न गाँवों में जाकर विस्थापन के शिकार आदिवासियों से वार्त्ता की। क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से भेंटकर विस्थापन की प्रशासन नीति पर वार्त्ता की।

●

दो दुनिया

अजय

कितनी है अलग अलग बसी दो दुनिया
देखती है रोज जिसे छोटी सी मुनिया।
दीवार के इस पार, दीवार के उस पार।
उस पार वाले 'साहब' कहाते हैं
शाम होते पार्क में टहलने को जाते हैं
चमचमाते रेस्तरां में परिवार संग खाते हैं
कुत्ते को गाड़ी में संग संग घुमाते हैं
बताती है यह सब मुझको वह मुनिया
देखती है रोज जो दो दो दुनिया
दीवार के इस पार, दीवार के उस पार।
इस पार वाले 'पीएपी' कहाते हैं
गाँव से उजाड़कर पटक दिये जाते हैं
विस्थापित बस्ती के चालीस बाई साठ' में
रहते मवेशी संग बड़े परिवार में
इस पार जब देखो बिजली का टोटा है
उस पार 'पावर कट' कभी नहीं होता है
टूटी सड़कें, रोते हुए नलके
कचरे के ढ़ेर में कुछ बिनते हुए लड़के
करने को झाड़ू पोंछा जाती जब मुनिया
माँ के संग देखती है रोज दो दो दुनिया
दीवार के इस पार, दीवार के उस पर।

●

पृष्ठ 1 का शेष

मानवाधिकार जन-सम्मेलन

को भारत में बढ़ती आतंकी घटनाओं और निर्दोष मुस्लिम नौजवानों की गिरफ्तारी की वजह बताया। वहीं अयोध्या से आए महंत युगल किशोर शरण शास्त्री ने कचहरियों पर हुए कथित हमलों पर सवाल उठाते हुए कहा कि फैजाबाद कचहरी में हुआ विस्फोट भाजना नेता विश्वनाथ सिंह और महेश पाण्डेय की चौकियों पर हुए थे और दोनों हादसे के वक्त गायब थे। उन्होंने कचहरी विस्फोटों में सुनवाई कर रहे न्यायाधीशों के साम्प्रदायिक रवैये का भी जिक्र किया। आर.टी.आई. कार्यकर्ता अफरोज आलम साहिल जिन्होंने बाटला हाऊस फर्जी मुठभेड़ में मारे गए युवकों के पोस्टमार्टम रिपोर्ट को निकलवाया था, ने सूचना के अधिकार कानून पर सवाल उठाते हुए कहा कि इसमें भी साम्प्रदायिक कारणों से रिपोर्टों को लटकाया जाता है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता हरमन्दिर पाण्डेय ने किया। संचालन पीयूसीएल प्रदेश उपमंत्री मसीहुद्दीन संजरी ने किया। कार्यक्रम में 12 सूत्रीय प्रस्ताव पारित किया गया। कार्यक्रम में तारिक शफिक, महासागर गौतम, बलवंत यादव, अब्दुल्लाह, आफताब अहमद, सालीम दाऊद, जितेन्द्र हरि पाण्डेय, सुनील, गुलाम अम्बिया, फहीम अहमद प्रधान, वसीउद्दीन, रवि शेखर, विजय प्रताप, शाहनवाज आलम, राजीव यादव, दिलीप कुमार 'दिली' गुंजन, बबली, अंशुमाला आदि मौजूद रहे। इस सम्मेलन में शमीम अख्तर संजरी की पुस्तक 'लहू-लहू' और तीन पुस्तकों सहित डॉक्यूमेंट्री फिल्म भगवा युद्ध का विमोचन किया गया।

द्वारा जारी : मसीहुद्दीन संजरी, उत्तर प्रदेश उपमंत्री, पी.यू.सी.एल.

घोषणा

लोकविद्या पंचायत मासिक समाचार पत्र

क) प्रकाशक - डा. चित्रा सहस्त्रबुद्धे, द्वारा विद्या आश्रम
ख) मुद्रक - डा. चित्रा सहस्त्रबुद्धे, द्वारा विद्या आश्रम
ग) स्वामी - विद्या आश्रम
घ) मुद्रणालय - सत्तनाम प्रिन्टर्स, एस-1/208, के-1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, वाराणसी, उ.प्र.
ङ) प्रकाशन स्थल - विद्या आश्रम, सा. 10/82ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007
च) सम्पादक - डा. चित्रा सहस्त्रबुद्धे

बुक पोस्ट

लोकविद्या पंचायत, मासिक समाचार पत्र, विद्या आश्रम (सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी-221007) की ओर से **डा.चित्रा सहस्त्रबुद्धे** द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित।
website : vidyaashram.org **Blog :** lokavidyapanchayat.blogspot.com , lokavidyajanandolan.blogspot.com **e-mail :** vidyaashram@gmail.com **Phone :** +91-9838944822
प्रेस : **सत्तनाम प्रिण्टर्स**, एस-1/208 के-1, नई बस्ती, पाण्डेयपुर, सारनाथ रोड, वाराणसी-221002